ओ३म्

इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार,31 मार्च 2013

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 31 मार्च, 2013 से 06 अप्रैल, 2013

चैत्र कृ.05 ● वि० सं०–2069 ● वर्ष 77, अंक 51, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

अखिल भारतीय वैदिक संगीत गोष्ठी हुई संपन्न

आर्य प्रादेशिक सभा, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में 17 –18 मार्च को महर्षि दयानन्दजी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में एक अखिल भारतीय वैदिक संगीत गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगीत गोष्ठी में देशभर से इस वर्ष 135 प्रविष्टियां प्राप्त हुई थीं। 14 राज्यों से आए संगीत अध्यापकों की यह प्रतियोगिता दो दिन चली जिसमें प्रथम सत्र में सभी ने अपनी प्रस्तुति दी और द्वितीय चरण के लिए 25 श्रेष्ठ पाए गए प्रतियोगियों को पुनः प्रस्तुति देने के लिए कहा गया। इस वर्ष की प्रतियोगिताता का उल्लेखनीय पहलू ये रहा कि 95 प्रतिशत से अधिक प्रस्तुतियां वैदिक विचारधारा पर आधारित थी।

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कोटा राजस्थान के श्री तुलसीदान ने प्रथम स्थान प्राप्त किया और उन्हें 11,000/– रुपये की नकद राशि ईनाम में दी गई। द्वितीय स्थान के लिए श्री विश्वरूप हलधर डी.ए.वी कन्यापुर (आसन सोल) पं बंगाल तथा विकास रेहल्न डी.ए.वी. कुरूक्षेत्र (हरियाणा) चुने गये। सुश्री श्रावणी मंडल,डी.ए. वी. दुर्गापुर (पं बंगाल) और श्री नरेन्द्र कुमार डी.ए.वी. लारेंस रोड़ अमृतसर (पंजाब) ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इनके अलावा श्री आर.आर. मिश्रा, डी.ए.वी. ऊर्जा नगर गोडडा (बिहार) श्री अश्विनी शर्मा, डी.ए.वी. फतेहाबाद (हरियाणा) तथा श्री नीलांजन मित्रा डी. ए.वी. आदित्यपुर जमशेदपुर (झारखण्ड) को 'सांत्वना पुरस्कार दिए गये।

इस प्रतियोगिता में निर्णायक मंडल के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग से प्रो. श्रीमती दीप्ति भल्ला, प्रो. अंजली मित्तल, श्रीमती सुनीता धर असिस्टेंट प्रोफेसर श्री एच.के. गोस्वामी उपस्थित हुए। श्रीमती दीप्ति भल्ला ने प्रतियोगिता के स्तर पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्हें निरंतर रियाज़ करते रहने की प्रेरणा दी और शास्त्रीय संगीत में निपुणता प्राप्त करने के लिए उत्साहित करते हुए कहा कि जब गाएं तो शब्द की स्पष्टता और उच्चारण पर ध्यान दें और वहीं गाएं जिसके बारे में प्रतियोगी विश्वस्त हो और अपनी प्रस्तुति के विषय में खुद चिंतन करें। प्रतियोगिता की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि ये डी.ए.वी. और आर्यसमाज ही हैं जो आज संस्कृति, संस्कार, आचार, सद्भावना और सदगुणों के प्रचार–प्रसार में पूरी तन्मयता से लगे हुए हैं।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री पूनम सूरीजी ने प्रतियोगिता में उपस्थित होकर प्रतियोगियों का उत्साहवर्धन किया। श्री प्रबोध महाजन, उप–प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने विजेताओं को पुरस्कार वितरित किए और निर्णायकों का धन्यवाद किया। उन्होंने उपस्थित प्रतियोगियों का आह्वान किया कि वे अच्छे संगीत के माध्यम से बच्चों में वैदिक मूलयों की शिक्षा देने में सहयोग करें।

डी.ए.वी. जयपुर में हुआ विशाल यज्ञ

डी.ए.वी. के 126 वर्ष पूरे होने पर पूरे हाने पर ''डी.ए.वी. प्रबंधकर्तृ समिति एवं आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के प्रधान आर्य श्रेष्ठ श्री पूनम सूरी जी की गरिमामयी उपस्थिति तथा उद्बोधन के साथ जयपुर में एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा एवं आर्य युवा समाज राजस्थान के संयुक्त तत्वावधान में प्रान्तीय स्तर पर आयोजित इस विशाल यज्ञ में श्रीमान् पूनम सूरी जी प्रधान, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी.ए. वी. कॉलेज प्रबंधर्कत समिति नई दिल्ली अपनी धर्मपत्नी के साथ मुख्य अतिथि व यजमान बने, महायज्ञ डॉ. प्रमोद के ब्रह्मत्व में हुआ। यज्ञोपरान्त मुख्य अतिथि द्वारा विद्यालय परिसर में नव–निर्मित 'प्राचार्य आवास' का उद्घाटन एवं स्मृति स्वरूप 'कल्पवृक्ष' का आरोपण किया गया।

माननीय श्रीमान पूनम सूरी जी ने ''डी. ए.वी. के 126 वर्ष 'विषय पर दृश्य–श्रव्य (प्रोजेक्टर) के माध्यम से जो प्रस्तुति दी वह अतीव ज्ञानवर्धक, प्रेरणा दायक ऐतिहासिक एवं अद्वितीय थी। विद्यालय के छात्र–छात्राओं द्वारा वेदमंत्रों पर नृत्य, महर्षि दयानन्द के जन्म से निर्वाण तक की घटनाओं पर आधारित लघुनाटिका प्रस्तुत की गई। इस शुभ अवसर पर श्रीमती जे.काकडिया, निदेशक (पब्लिक स्कूलज्– III) डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंधकर्त समिति, नई दिल्ली, श्री सत्यपाल जी आर्य, राष्ट्रीय सहमंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, श्री सत्यव्रत सामवेदी जी, सार्वदेशिक प्रधान, मंत्री व कार्यकारणी के पदाधिकारीगण, विद्यालय की स्थानीय प्रबंधकर्त्री समिति के सदस्य, स्थानीय आर्य समाजों के पदाधिकारीगण, विद्यालय की स्थानीय प्रबंधकर्त्री समिति के सदस्य, स्थानीय आर्य समाजों के पदाधिकारी एवं अभिभावकगण उपस्थित थे। कार्यक्रम के अंत में, प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा ने सभी का सहृदय आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का समापन शान्ति पाठ के साथ हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. ९

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 31 मार्च, 2013 से 06 अप्रैल 2013

आओ, देवों के मार्ग पर चलें

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

आ देवानामपि पन्थामगन्म, यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम्।
आग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता, सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति।।

अथर्व 19.59.3

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अपि**) क्या (**देवानां**) देवों के (**पन्थां**) मार्ग पर (**आ–अगन्म**) [हम] चलें? [हाँ], (**यत्**) यदि (**तत् अनुप्रवोढुम्**) उस पर स्वयं को चलने में (**शक्नवाम**) समर्थ हों। (**अग्निः**) आत्मा (**विद्वान्**) विद्वान है, (**सः**) वह (**यजात्**) यज्ञ करे, (**सः**) वह (**इत्**) सचमुच (**होता**) होम–निष्पादक है। (**सः**) वही (**अध्वरान्**) यज्ञों को और (**सः**) वही (**ऋतून्**) ऋतुओं को (**कल्पयाति**) रचाये।

● आओ, हम देवों के मार्ग पर चलें। यज्ञ के तंतु से बंधे रहना ही देवों का मार्ग है। देखो, ये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पृथिवी, ऋतु, संवत्सर आदि देव कैसे 'यज्ञ' के मार्ग पर चल रहे हैं। कभी उनके यज्ञ–पालन में व्यतिक्रम नहीं होता। शरीर में भी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि देव कैसे संगठित हो देवयान का अवलम्बन कर शरीर–यज्ञ को चला रहे हैं। समाज में भी 'देव' पदवी को पाये हुए महापुरुष 'यज्ञ' के ही पथ पर चला रहे हैं। और, सबसे बड़ा देवों का देव परमात्मा भी निरन्तर देव–मार्ग पर चलता हुआ इस ब्रह्मांड–यज्ञ का सम्पादन कर रहा है। हम चाहते हैं कि हम भी इस देव–मार्ग के पथिक बनें। क्या तुम चाहते हो कि इस मार्ग पर चलना अति कठिन है, तलवार की धार पर चलने के समान है, अतः पहले शक्ति को तोल लो कि तुम इस पर स्थिर रह भी सकोगे या नहीं, उसके पश्चात् इस मार्ग पग बढ़ाना? सुनो, हमने अपने सामर्थ्य को भलीभांति परख लिया है। हमारा आत्मा 'अग्नि' है, अग्रणी है, तेज का पुंज है, ज्योतियों की ज्योति है। वह 'विद्वान्' है, देवों की राह पर चलना और चलाना जानता है। अतः हमें देव–प्रदर्शित यज्ञ–मार्ग से भटक जाने का कोई भय नहीं है। हम निश्चिंत होकर उसके हाथों में अपनी 'यज्ञ' की पतवार सौंप रहे हैं। वह 'होता' है, यज्ञ–निष्पादन में कुशल है, संस्कृत हवि का होम करने में निष्णात है। वह जानता है कि यज्ञ को 'अध्वर' अर्थात् हिंसा–रहित ही होना चाहिए। भद्रजनों को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया यज्ञ यज्ञ नहीं है। हमारा आत्मा 'अध्वर' यज्ञों को रचाये और वही यह भी देखे कि किस यज्ञ के लिए कौन सी ऋतु, कौन सा समय उपयुक्त है, क्योंकि काल–अकाल का विचार किये बिना प्रारंभ किया गया या सफल नहीं होता। आओ, हम देव–पथ के पथिक बनें। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी कह रहे थे स्वाध्याय का अर्थ केवल वेद पढ़ना ही नहीं है। स्वाध्याय का तीसरा रूप है आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय के पश्चात् शारीरिक तप का अन्तिम साधन हैं। इसके बाद वाणी का तप क्या है इस पर विचार किया और कहा सत्य बोल परन्तु मीठा बोल दूसरे का हित करने वाला बोल। वाणी के तप का क्या लाभ बताया और मीठा और कड़वा बोलने के प्रणाम बताए आगे कहा कि इस वाणी द्वारा परमात्मा का स्मरण कर। यह भी वाणी का तप है। इस तप द्वारा वाणी में वह गुण आता है जिसके लिए यह उत्पन्न हुई। जिसमें मिठास नहीं, जो दूसरे के भले के लिए, दूसरों के हृदय में प्यार, मेलमिलाप और शान्ति उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त नहीं होती वह वाणी नहीं, चमड़े का एक टुकड़ा है केवल।

अब आगे.....

एक था घुड़सवार। पहुँच गया किसी गाँव में अपने एक मित्र के पास। मित्र ने उसे देखा तो अपने कमरे में आ गया। उसके घोड़े को बाहर से सेहन में बाँधा। यात्री को कमरे में बैठाकर बाहर से द्वार बन्द कर दिया और घोड़े के पास पहुँचकर उसे पानी पिलाया। घास और दाना खिलाया। तब उसे मालिश करने लगा। खुरैरा लेकर उसकी सेवा करने लगा। उसकी टाँगें भी दबाने लगा कि बेचारा दूर से आया है, थक गया होगा। स्वयं वह व्यक्ति भाँग पीता था। निश्चित समय पर भाँग पीता और जुट जाता घोड़े की सेवा करने में। घोड़े को गर्मी न लगे इसलिए इसको पंखे से हवा करता। उसका रंग खराब न हो इसलिए उसे खूब ज़ोर से मल–मलकर नहलाता। वह दुर्बल न हो जाय इसलिए उसे अच्छे–से–अच्छा खिलाता। इस प्रकार तीन दिन हो गये। बेचारा यात्री कमरे में बन्द खिड़की से देखता कि घोड़े की बहुत सेवा हो रही है, उसे खूब सँवारा जा रहा है और चकित होता कि इस व्यक्ति को क्या हुआ है? इस व्यक्ति का अतिथि मैं हूँ, मित्र मैं हूँ या यह घोड़ा है? तीन दिन व्यतीत हो गये तो एक साधु उधर से निकला। उसने गाँववाले को घोड़े की सेवा करते देखा तो बोला, "खूब सेवा करते हो भाई! तुम्हारा घोड़ा है?" देहाती ने कहा, "नही बाबा! मेरे मित्र का है।"

साधु ने पूछा, "मित्र कहाँ है?" देहाती ने उत्तर दिया, "उसे मैंने कमरे में बन्द कर दिया है।" साधु ने आश्चर्य से कहा, "बन्द कर दिया है? उसे कुछ खाने–पीने को नहीं दिया?" देहाती बोला, "नहीं, मैं घोड़े की सेवा कर रहा हूँ।"

साधु ने कहा, "अरे पगले, क्या करता है? जिसका घोड़ा है उसकी भी तो सुन ले! उसे तूने भूखा–प्यासा बैठ रखा है। घोड़े को खुरैरा किये जाता है। खोल दरवाज़ा, उसे देख। शायद वह भूख और प्यास से बेहोश हो गया होगा।"

देहाती ने लापरवाही से उत्तर दिया, "देखते नहीं मैं घोड़े की सेवा कर रहा हूँ? मेरे मित्र का घोड़ा है, इसकी सेवा में दिनभर लगा रहता हूँ। दूसरा काम करने का अवकाश मुझे कहां है?"

आप कहेंगे, वह व्यक्ति भाँग पिये हुए था इसलिए उसने ऐसी बात कही। परन्तु हम क्या कर रहे हैं? घुड़सवार को हमने अन्दर बन्द कर दिया है; उसकी चिन्ता नहीं; उसके खाने–पीने का ध्यान नहीं, बस घोड़े को खुरैरा किये जाते हैं। इसकी सेवा में ही हमें अवकाश नहीं मिलता। सोचकर देखिये, कितनी कंघियाँ आप इसके बालों को सँवारने में तोड़ चुके हैं? लक्स के साबुनों की कितनी टिकियाँ आप खर्च कर चुके हैं? सरसों का कितने टन तेल आप इसको मल चुके हैं? कितना अन्न इसे खिला चुके हैं? कितने फल इसके पेट में झोंक चुके हैं? प्रातः से सांय तक और सायंकाल से प्रातः तक कोई दूसरी चिन्ता नहीं– इस घोड़े की सेवा हम किये जाते हैं और घुड़सवार अन्दर भूखा–प्यासा बैठा है। उसे हम यह भी नहीं पूछते हैं कि होश में है या बेहोश हो गया? यदि वह अपनी क्षीण–सी आवाज़ में पुकारता भी है तो हम इसकी आवाज़ ही नहीं सुन पाते। अरे! उस व्यक्ति को कहते हो कि वह पागल है, कहते हो उसने भाँग पी रखी थी, तो अपने–आपको क्या कहोगे?

मैं यह नहीं कहता कि इस शरीर की रक्षा न करो। अवश्य करो मेरे भाई! इस घोड़े को पालो अवश्य। महर्षि स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम बनाये तो उनमें स्पष्ट कहा, "सारे संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना आर्यसमाज का कर्तव्य है।" शारीरिक उन्नति का वर्णन उन्होंने सबसे पहले किया। आर्यसमाज शरीर की निन्दा नहीं करता। वेद भी इसकी निन्दा नहीं करता। महर्षि दयानन्द भी इसकी निन्दा नहीं करते। फिर मैं ही क्यों करूँगा?

परन्तु केवल यह शरीर ही तो नहीं है। इसके भीतर बैठा हुआ आत्मा भी है। उसका भी ध्यान रखो। शरीर बहुत अच्छा है। यह घृणा करने की वस्तु नहीं, पालने और सँभालने की वस्तु है। इसे सँभालकर रखो। फेंक नहीं दो। निर्बल न बना दो इसे। इसकी ओर से लापरवाही न करो। यह सात ऋषियों की तपोभूमि है। यह देवताओं का यज्ञ–स्थान है।

वेद भगवान् ने इसे एक सुन्दर नौका कहा है। '**सुप्रतीकम्**'–बहुत सुन्दर दिखाई देने वाली किश्ती कहा है। परन्तु नाव के सुन्दर होने से ही तो काम नहीं चल जाता। यह भी आवश्यक है कि इसे चलाया जाये। अरे, इस नौका को चलाओ तो सही! परन्तु हम किश्ती में बैठते भी हैं, चप्पू भी चलाते हैं और अगले वर्ष देखते हैं तो किश्ती वहीं–की–वहीं खड़ी है, एक तिल भी आगे नहीं बढ़ी।

काशी के कुछ पण्डित थे। एक पर्व समीप आया तो उन्होंने सोचा, चलो यह पर्व प्रयागराज में चलकर मनाएँ। तो बैठ गये एक बहुत बड़ी और अच्छी–सी नाव में। सायंकाल का समय था। रात्रि होने वाली थी। उसका अँधेरा बढ़ता जाता था। सबने सोचा, रातभर नौका चलाएँगे, प्रातः प्रयागराज पहुँचकर स्नान करेंगे, पर्व मनाएँगे। काशी के कुछ लोगों को भाँग बहुत प्यारी होती है। इसलिए नौका में भाँग का भी प्रबन्ध था। सब लोगों ने भाँग पी। कुछ गीत गाने लगे, कुछ लोग चप्पू चलाने लगे। खूब मस्ती के साथ वे गीत गा रहे थे। खूब जोश के साथ चप्पू चला रहे थे। पहले लोग थक जाते तो दूसरे लागे चप्पू चलाने लगते। बीच–बीच में भाँग भी पीते, मिठाई भी खाते, लगातार चप्पू भी चलाते। रात्रि हो गई, तारे निकल आये। वे चप्पू चलाते रहे। खूब मजे से गीत भी गाते रहे। प्रातःकाल का प्रकाश हुआ तो एक व्यक्ति ने कहा, "अब तो दिन निकलने वाला है। प्रयागराज आ गया होगा। तनिक उठकर देखो तो सही कि कहाँ तक पहुँचे हैं?

तब एक व्यक्ति उठा, सामनेवाला किनारे को देखकर बोला, "मुझे तो यह काशी का घाट प्रतीत होता है।" दूसरे बहुत जोर से हँस उठे; बोले, प्रतीत होता है कि भाँग अधिक पी गया है। इसे प्रयाग मे काशी दिखाई देती है!"

एक पुरोहित जी थे, उनसे कहा गया, "पुरोहित जी! आप उठकर देखो। यह व्यक्ति तो भाँग के नशे में है।" पुरोहित जी आँख मलते हुए उठे। आँखें फाड़कर उन्होंने सामने देखा। धीमी–सी आवाज में बोले, "शायद मैं भी नशे में हूँ। मुझे भी यह काशी का घाट प्रतीत होता है।"

सब लोग फिर हँस उठे, "यह भी नशे में है। रात–भर हम चलते रहे और इन्हें अभी तक काशी दिखाई देती है।" तीसरे से बोले, "तुम उठो भाई! तुम देखो तनिक ध्यान से।"

अब तीसरा व्यक्ति उठा। उसने अधिक से देखा और चिल्ला उठा, "अरे आश्चर्य है! यह तो सचमुच काशी जी का घाट है।"

फिर एक–एक करके सबने देखा, नाव उसी घाट पर खड़ी है जहाँ पर वे सायंकाल नाव पर बैठे थे। परन्तु यह हुआ कैसे? रात–दिन वे चप्पू चलाते रहे, फिर नाव जहाँ–की–तहाँ खड़ी तो किस प्रकार?

तब किसी ने देखा और कहा, आश्चर्य तो यहाँ हुआ पड़ा है। जिस कील के साथ नाव की रस्सी बँधी थी उसके साथ तो अब भी बँधी है। भाँग के नशे में हम इस रस्सी को खोलना ही भूल गए।"

(आर्यसमाज का हॉल अट्टहास से गूँठ उठा और पूज्य स्वामी जी ने ऊँची आवाज् में कहा–)

अरे ओ चप्पू चलाने वालो! इस रस्सी को तो खोलो! मोह और ममता की, राग और लगाव की यह जो रस्सी तुमने अपनी नाव को बाँध रखी है उसे खोले बिना, उससे छुटकारा पाए बिना, तुम्हारे चप्पू चलाने से भी यह नौका पहुँचेगी नहीं। यह नौका बहुत सुन्दर है, इसमें बैठकर आप कहीं भी पहुँच सकते हो। भगवान् के इस विशाल संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं जो आपको न मिल सके। सब–कुछ विद्यमान है। आगे बढ़ो और ले लो! परन्तु पहले इस मोह और लगाव की रस्सी को तो खोल लो! प्रायः हम बहुत जोश के साथ गा–गाकर कहते हैं।

क्या तन माँजना रे, आखिर मिट्टी में मिल जाना।

यह ठीक है कि अन्त में यह मिट्टी में मिल जायेगा परन्तु जब तक इसके अन्दर मेरा प्रधानमंत्री बैठा है, मेरे महाराज बैठे हैं, मेरा देवता बैठा है, तब तक इस कोठी की, इस रथ की, इस मकान की, इस मोटर की, इस नौका की रक्षा कर। यह अनमोल रत्न है। इसकी प्रत्येक वस्तु ऐसी है कि किसी भी मूल्य पर कहीं मिलती नहीं। यह प्रभु की रचना का चमत्कार है। प्रभु की बहुत–बहुत कृपा न हो तो यह शरीर मिलता नहीं। इसका एक–एक अंग पता नहीं कब और किस प्रकार सोचकर बनाया था। अथर्ववेद में इसका बहुत सुन्दर वर्णन आता है। इसकी एड़ी कैसी है? इसका पाँव कैसा है? टाँगें कैसी हैं? कमर कैसी है? इसके हाथ कैसे हैं? अगुँलियाँ कैसी हैं? नाखुन कैसे हैं? आँखें, नाक, कान, बाल कैसे हैं? दाँत कैसे हैं? वाणी कैसी है? एक–एक वस्तु का अति सुन्दर वर्णन वहाँ आता है।

वेद भगवान् तो कवियों के उस महाकवि का काव्य है जो न कभी बूढ़ा होता है, न मरता है। इसमें प्रत्येक वस्तु का चित्र ही नहीं, महिमा भी विद्यमान है। उसे देखकर ज्ञात होता है कि मनुष्य का यह शरीर कैसी अद्भुत वस्तु है। इसका प्रत्येक अंग कितना आवश्यक और मूल्यावान् है।

लाहौर में लोहारी और आलमशाही दरवाज़े के बाहर एक उद्यान था किसी समय। इस उद्यान (बाग) में एक फ़कीर रहता था। जिसके दोनों बाजू नहीं थे। उद्यान में मच्छर बहुत होते थे। मैंने कई बार उस फ़कीर का देखा; हाथ थे नहीं, आवाज़ देकर माथा झुकाकर वह पैसा माँगता था। एक दिन मैं उसके पास खड़ा हो गया। पूछा, "भाई! पैसा तो माँग लेते हो, लोग तुम्हारे इस प्याले में फेंक देते हैं; परन्तु रोटी कैसे खाते हो?"

वह बोला, "जब पैसे इक्ट्ठे हो जाते हैं, शाम हो जाती है तो मैं जो परे नानबाई की दुकान है न उसको आवाज़ देता हूँ–ओ जुम्मा, आओ पैसे जमा हो गए हैं, इन्हें ले जाओ, मुझे रोटियाँ दे जाओ। तब वह आता है, पैसा उठाकर ले जाता है, रोटियाँ दे जाता है।"

मैंने कहा, "रोटी तो आ गई परन्तु आप खाते कैसे हो?"

वह बोला, "स्वयं तो मैं खा नहीं सकता। रोटी सामने पड़ी रहती है। तब मैं सड़क पर जाने वालों को आवाज देता हूँ कि सामने जाने वालो! दो हाथों वालो! भुजाओं वालो! यह हाथ बहुत बड़ी सम्पत्ति है। प्रभु करे तुम्हारे हाथ सदा स्थिर रहें मुझ पर दया करो, तरस खाओ मुझपर। मुझे रोटी खिला दो, मेरे हाथ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति तो सुनता नहीं, परन्तु किसी–किसी को दया आ जाती है। वह प्रभु का प्यारा मेरे पास बैठता है। अपने हाथ से ग्रास तोड़कार मेरे मुँह में डालता है और मैं खाता हूँ।"

उसकी आँखों में आँसू थे। मेरा दिल भर आया था। फिर भी पूछा, "रोटी तो इस प्रकार खा लेते हो भाई! परन्तु पानी कैसे पीते हो।"

वह बोला, "सामने घड़ा रखा है न? उसके पास जाता हूँ। बैठकर एक टाँग से इसको सहारा देता हूँ। दूसरी से इसके मुँह के नीचे प्याला करता हूँ और प्याले में पानी भर जाता है।"

मैंने पूछा, "पीते कैसे हो?"

वह बोला, "पशुओं की भाँति प्याले पर झुककर पीता हूँ।"

मैंने कहा, "परन्तु यहाँ मच्छर भी तो बहुत हैं, यदि माथे पर या शरीर पर मच्छर लड़ जाए तो क्या करते हो?"

वह बोला, "मच्छर तो सचमुच बहुत हैं। मेरा यह शरीर देखो, माथा देखो। सबको मच्छरों ने लहुलुहान कर रखा है। माथे पर कोई मच्छर लड़ जाए तो माथे को जमीन पर रगड़ता हूँ और शरीर के दूसरे भाग पर लड़ जाए तो पानी से निकली हुई मछली की भाँति भूमि पर लोटता हूँ।" हाय–हाय! केवल दो हाथ नहीं और कितनी दुर्गति बन रही है।

इस शरीर की निन्दा मत करो। वस्तुतः यह अनमोल रत्न है। इसका प्रत्येक अंग इतना मूल्यवान हैं कि इस संसार का कोई भी कोष इसका मूल्य दे नहीं सकता। परन्तु इसके साथ यह भी देखो कि यह शरीर मिला किसलिए है? इसका प्रत्येक अंग किस उद्देश्य के लिए है? इससे लाभ उठाओ। इसे प्रयोग करो, परन्तु जीवन के वास्तविक आदर्श को भूल न जाओ। यह यौवन बरबाद करने के लिए नहीं मिला। ये आँखें पाप को ढूँढने के लिए नहीं मिलीं। ये कान निन्दा सुनने के लिए नहीं मिले। ये हाथ दूसरों का गला घोंटने के लिए नहीं मिले। यह मन अहंकार और मोह के जाल में फँसने के लिए नहीं मिला। यह वाणी कड़वा बोलने और आग लगाने के लिए नहीं मिली, प्रभु का स्मरण करने और मीठा सत्य बोलने के लिए मिली है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने कहा–

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

'इस वाणी से आग न लगा। इससे मीठा बोल, अमृत की वर्षा कर, मिलाप करा लोगों में और प्रभु का स्मरण कर।'

फिर कहा है, स्वाध्याय कर। इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। इसके पश्चात् मानसिक तप क्या है? मन के लिए तप का मार्ग क्या है? तो भगवान् श्री कृष्ण जी कहते हैं–

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

देखो भाई! भगवान् श्री कृष्ण ने भी क्या–क्या सुन्दर बातें कही हैं! मन का तप क्या है? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा–मन का तप यह है कि इसे खोटे विचारों, गन्दे विचारों, बुरे विचारों का अड्डा न बनने दो। इसे काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की चिंगारियों से बचाओ। और कैसे बचाओ? कृष्ण जी ने कहा, '**मनःप्रसादः**'– मन को प्रसन्न रख इसमें आनन्द जगाकर–मुस्कराहट को, हँसी को जगाकर। यह संसार तो बिगड़ता ही रहता है। आजकल बहुत बिगड़ गया है। कैसे–कैसे घिनावने अपराध इसमें होने लगे हैं! कैसी–कैसी आश्चर्यजनक चोरियाँ! ऐसी बातें पहले कभी सुनी नहीं थीं। प्रतीत होता है, कुछ लोगों ने उन्नति का अर्थ पाप और अपराध की उन्नति समझ लिया हैं, चालाकी और धोखेबाजी की उन्नति को ही उन्नति समझ लिया है।

– क्रमशः

टंकारा में आयोजित ऋषि बोधोत्सव पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि के सभा प्रधान, श्री पूनम सूरी जी द्वारा भेजा गया संदेश

ऋषि दयानन्द की इस पवित्र, पावन, जन्मस्थली पर देश और विदेशों से ऋषि बोधोत्सव पर आए आप सभी आर्यजनों का मैं अपने दिल की गहराईयों से स्वागत और अभिनन्दन करता हूँ। आप लोग दूर-दराज स्थानों से समय, परिवहन की मुश्किलों का सामना करके जागरण का सही मार्ग दिखाने वाले, पूरे संसार के हित चिन्तक व मार्गदर्शक को अपनी श्रद्धाञ्जलि देने यहाँ आये हैं इसके लिए मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। आदरणीय मुंजाल जी, श्री रामनाथ जी सहगल, श्री अजय सहगल, इस ट्रस्ट के अन्य पदाधिकारियों और सदस्यों का मैं एहसानमंद हूँ, जो आपने ऐसे शुभअवसर पर मुझे याद किया। आप तो मेरे अग्रज है रहनुमां है, इसलिए मै आपका कृतज्ञ हूँ। इसलिए मैं आपको कृतज्ञ हूँ। आइए सब मिलकर जोरदार तालियों से इनका अभिनंदन करे। मेरा यह मानना है और मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि हम सबने इस उत्सव मे आकर त्यागमूर्ति संन्यासियों से जो आर्शीवाद प्राप्त किया है, यहाँ आए आर्य विद्वानों से जो मार्ग दर्शक अनमोल वचन सुने हैं, देश के चोटी के भजनोंपदेशकों ने भजनों की जो आध्यात्मिक भक्तिधारा प्रवाहित की उसमें तल्लीन होने का मौका हमें जो मिला है, इस महान विद्यालय के निष्ठावान, समर्पित आचार्यों के ब्रह्मत्व मैं जिज्ञासु ब्रह्मचारियों के सरल और सरस वेद-पाठ के रूप में ईश्वर की वेद के मंत्रों से हमारे श्रवण पवित्र और सार्थक हुए हैं और इन सबसे ऊपर इस परिसर के आध्यात्मिकता और माहौल में कुछ समय बिताने का जो अमूल्य अवसर मिला है, इन सब बातों के फलस्वरूप हम यहाँ से एक नया जज़्बा, एक नयी स्फूर्ति, एक नया आत्मबल और जागते रहने का एक संकल्प लेकर अपने घरों को,अपने स्थानों, संस्थाओं और आर्यसमाजों में जायेंगे और उस परमपिता के सच्चे दर्शन, विश्व नियन्ता उस प्रभु के रहस्यों को जानने और उसकी अमृत संतान की सेवा में अपना तन, मन और धन लगाने का विनम्र प्रयत्न करते रहेंगे। लेकिन यह सब इतना आसान भी नहीं। आइये उस परमपिता से प्रार्थना करें कि वह हमारी मुश्किलों में सहाय करें-

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव।

यह मंत्र ऋषि दयानन्द का प्रियतम मन्त्र है। अपने वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में इसी मन्त्र से ईश्वर की सहायता की प्रार्थना की है। प्रत्येक मतमतान्तर को मानने वाला इस मंत्र से बिना संकोच प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार की प्रार्थना सब प्रकार की साम्प्रदायिकताओं से मुक्त है, सभी 'दुरित' से बचना चाहते है और 'भद्र' को ग्रहण करना चाहते हैं।

इस प्रार्थना को सफल करने के लिए हमें अपने जीवन में पांच 'प्र' धारण करने पड़ेगे। ये पांच 'प्र' हैं- प्रतिज्ञा, पुरुषार्थ, प्रतीक्षा, प्रार्थना, प्रयास। यदि हम सब यह चाहते हैं कि यह उत्सव कामयाब हो, पूरी तरह से सफल हो, तो यह प्रतिज्ञा करें- मैं आज से निरन्तर जागते रहना की प्रतिज्ञा करता हूँ। **अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तन्मेच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।** केवल प्रतिज्ञा करने से भी हमारा मकसद हल नहीं होगा। अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हमें करना होगा पुरुषार्थ। पुरुषार्थ के बिना कुछ नहीं मिलता। इस पुरुषार्थ के लिए हमें चार सकारों की शरण लेनी होगी। सकार कहते हैं 'स' को। चार स हैं- संध्या, स्वाध्याय, सत्संग और सेवा। प्रतिज्ञा करें कि प्रतिदिन प्रातः उठकर ईश्वर का जप ध्यान चिन्तन करेंगे। वेदादि सत् शास्त्रों का स्वाध्याय करेंगे और साथ ही करेंगे अपने 'स्व' का अध्ययन Self Introspection, Self evaluation, Self analysis। आर्य समाज के सत्संगों में जायेंगे। यह सब करने के बाद दीन दुःखियों की सेवा करेंगे सहायता करेंगे। प्रतीक्षा कर अन्तःकरण को शुद्ध करने का इससे अच्छा तरीका ही नहीं है। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी कहा करते थे चार 'स' सुखी संसार के साधन हैं। चादर 'स' अपने अन्दर भर लें, जीवन सुख से भर जायेगा। किसी शायर ने कहा-

इबादत है दुःखियों की इमदाद करना,
जो नाशाद हैं उन्हें दिलशाद करना।
असली पूजा और हवन यही है,
जो बर्बाद हैं उन्हें आबाद करना।।

अब बारी आई प्रार्थना की- बड़े मन से प्रार्थना की- हे भगवन मैंने प्रतिज्ञा कर ली, पुरुषार्थ किया, प्रतिज्ञा भी की अब तो बस मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो, प्रभु! बुराईयां खुद-बु-खुद दूर हो जायें और अच्छाइयाँ भी स्वयं चलकर मेरे पास आ जायें। प्रार्थना तो की लेकिन जवाब नहीं मिला। भला क्यों? अच्छाइयों का घर तो है मन और मन में घर बना रखा है मैल ने। तो क्या करें? बार-बार धुलाई करो कपड़ा साफ हो जायेगा, चमक जायेगा। फिर जैसा अक्स डालेंगे, पड़ेगा। तो करना क्या होगा! प्रयास।

मुझे पूरा यकीन है आपने इस बोधोत्सव पर आकर जो प्रतिज्ञा की है, उसकी प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करेंगे, प्रार्थना करेंगे, प्रार्थना स्वीकार होने की प्रतीक्षा करेंगे और फिर निरन्तर प्रयास करते रहेंगे।

मित्रों कुछ और संकल्पों की ओर भी मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आज आर्यसमाज की दशा को सुधारने के लिए भी संकल्प लेने होंगे। दशा क्या है आप से छुपा नहीं। मुझे एक ऐसे परिवार में जन्म मिला है जिसको स्वामी दयानन्द की छोह प्राप्त हुई। मेरे परदादा मुंशी गणेश दास जी, सियालकोट के गांव जलालपुर जहाँ मैं रहते थे। हिन्दु समाज धर्म की दशा से इतने परेशान हुए कि फैसला कर लिया- कल सुबह क्रिश्चियन बन जाऊंगा। उसी शाम स्वामी दयानन्द के दर्शन हुए। अपनी शंकायें स्वामी जी के सामने रखीं। युक्ति और विवेक की प्रतिमूर्ति स्वामी दयानन्द के समाधान दिये और दूसरी सुबह गांव में आर्य समाज की स्थापना हुई। मुंशी गणेशदास जी इस समाज के मंत्री बने। इन्हीं मुंशी गणेशदास के सुपुत्र खुशहाल चन्द्र, जो आगे चल कर महात्मा आनन्द स्वामी बने, मेरे दादा हुए जिनकी गोदी में खेलते हुए आर्य समाज की घुट्टी मिली। महात्मा आनन्द स्वामी के पुत्र रणवीर देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले सेनानी बने जिन्हें जेल भी जाना पड़ा। मेरे तो खून के एक-एक कण में बसा हुआ है आर्य समाज।

आज चारों ओर देखता हूँ तो मन रो उठता है। स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष जैसे रोगी के कीटाणुओं ने तो जैसे एक साथ धावा बोल दिया है। पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलन हुए। घर एक ही, उद्देश्य एक ही लेकिन मंच, दो। मुझे भी आमंत्रण मिला। मैंने जाना उचित नहीं समझा। अपनी आत्मा की आज्ञा का पालन करते हुए दोनों आयोजनों को अपना एक ही संदेश भेजा जिसमें अपनी आन्तरिक पीड़ा को बताते हुए कहा कि जब दोनों पक्ष मिलकर एक स्वर से एक मंच से निःस्वार्थ, प्रेम और विचारों की एकता का प्रदर्शन करेंगे तो मैं नंगे पाँव

चलकर चला आऊंगा ताकि ऋषि-ऋण से उऋण होने के यज्ञ में 'इदं न मम' कह कर अपनी विनम्र आहुति दे सकूँ। कुछ आर्य पत्रिकाओं में यह सन्देश छपा भी और मैं धन्य हो गया जब आर्य समाज के सच्चे सिपाहियों के बधाई सन्देशों का सिलसिला शुरू हुआ।

आज मैं ऋषि की इस पावन जन्म स्थली से एक विनम्र आह्वान् देना चाहता हूँ- आर्यो! एक हो जाओ! उतार फैंको वैमनस्य, उदात्त के, ईर्ष्या के, द्वेष के विषैले नाग को और प्रेम रस में तृप्त होकर सहृयता, सामनस्य और अविद्वेष का उदात्त आधार लेकर एक दूसरे से ऐसे मिलो, एक दूसरे इस तरह प्रेम करो जैसे गाय अपने ताजे ब्याये (जन्में) बछड़े से प्यार करती है।

संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मनांसि जानताम्
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्तव्य के मानी बनो।।

ईश्वर न करे, अगर ऐसा न हो सका तो कवि के ये शब्द सच हो जायेंगे-

न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ आर्य समाज वालो।
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा और डी.ए.वी. प्रबंधन समिति के प्रधान की कुर्सी तो आपने दी। गद्देदार भी है पर चुभती भी रहती है। डी.ए.वी. जिसका मतलब है लगभग 2 करोड़ देशवासियों का एक परिवेश, आज जिस उद्देश्य लक्ष्य को आगे रखकर चल रहा है वह ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है-

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुन्विहि,
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्वणं वयत जोगुवामपो, मनुर्भव
जनया दैव्यं जनम्।।

शेष पृष्ठ 8 पर

एक संघर्षपूर्ण बलिदान–गाथा

● विश्वनाथ

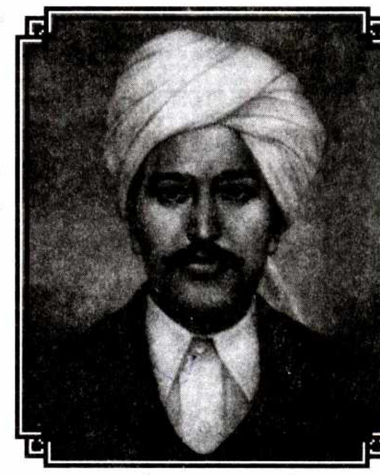

शहीद राजपाल जी

अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डी. रूज़वेल्ट ने अपने प्रसिद्ध संदेश में यह कहा था कि आज संसार को चार तरह की स्वतंत्रता की जरूरत है :

1. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (Freedom of Expression)
2. धार्मिक स्वतंत्रता (Freedom to Worship)
3. ग़रीबी से स्वतंत्रता (Freedom from Want)
4. 'डर' से स्वतंत्रता (Freedom from Fear)

क्रम भी उन्होंने विषय के महत्व के अनुसार दिया था अर्थात् सबसे महत्वपूर्ण है –अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता'। यह बात आज से सत्तर वर्ष पहले की है। आज भी ठीक वही स्थिति है और यही चार स्वतंत्रताएं संसार के लिए सबसे आवश्यक हैं। आज विचारों के प्रकाशन की स्वतंत्रता नहीं है। धर्म पर भी धार्मिक आतंकवाद का संकट है। आधी दुनिया अभी भी अभावग्रस्त है और अंत में जहाँ तक भय से मुक्त होने का प्रश्न है, आज तो सारा संसार ही हिंसक आतंकवाद और जिहाद के भय से संत्रस्त है।

महाशय राजपाल का सारा जीवन अभिव्यक्ति और प्रकाशन की स्वतंत्रता के संघर्ष में ही बीता। उन्हें केवल 45 वर्ष जीने का अवसर मिला था जिसमें से केवल 15 वर्ष ही वे सक्रिय प्रकाशक के रूप में काम कर सके और इन 15 वर्षों में दो सौ से अधिक मौलिक पुस्तकें, तीन भाषाओं में–उर्दू, हिन्दी और अंग्रेज़ी में प्रकाशित कीं। उर्दूभाषी पंजाब में वे हिन्दी प्रकाशन के अग्रदूत थे। वे प्रकाशन को सामाजिक चेतना का साधन मानते थे और स्वराज्य की लड़ाई में भी उसे हथियार के रूप में बरतते थे।

एक साधारण व्यक्ति, एक अत्यंत साधारण परिवार में जन्म लेकर, मात्र मिडिल क्लास तक शिक्षा प्राप्त करके कैसे परिस्थितियों के कारण संघर्ष की भट्ठी में तपकर एक असाधारण व्यक्ति बनता है– यह कहानी है उनके जीवन की। यह उनका सौभाग्य था कि उन्हें प्रारंभ से ही कांग्रेस और आर्यसमाज के प्रखर नेता स्वामी श्रद्धानंदजी के साथ उनके साप्ताहिक पत्र में सहायक संपादक के रूप में काम करने का अवसर मिला। वे कहा करते थे कि स्वामी श्रद्धानंदजी उनके लिए पारस पत्थर के समान थे जिसके संसर्ग में आकर उनके पूरे चरित्र का ही कायाकल्प हो गया। उनमें समाजसेवा की भावना, आर्यसमाज के प्रति प्रेम और देश के लिए निडर होकर सेवा करने का संस्कार जाग उठा। स्वामी श्रद्धानंदजी ने ही शिक्षा में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया था– पूर्ण रूप से विदेशी प्रभाव से मुक्त, शिक्षा के भारतीय आदर्शों को स्वीकार करने वाले गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना 2 मार्च, 1902 को करके। इस गुरुकुल से निकले अनेक स्नातकों ने, लेखक, संपादक, इतिहासकार और क्रांतिकारी बनकर देश की सेवा की और नाम पैदा किया। महाशय राजपाल प्रतिवर्ष परिवार सहित गुरुकुल कांगड़ी के अधिवेशन में जाते थे। उनके लिए वहाँ जाना तीर्थ यात्रा के समान था।

विधि का विधान कहिए कि राजपाल जी को एक साथ दो बड़े मोर्चों पर अकेले ही, साधारण साधनों के साथ लड़ना पड़ा। अब तक उनका यह विश्वास बन चुका था कि अंग्रेज़ों के राज में, 'प्रकाशन की स्वतंत्रता के लिए' संघर्ष करना ही पड़ेगा। प्रारंभ में ही जब उन्होंने भाई परमानंदजी द्वारा लिखित 'भारत का इतिहास' प्रकाशित किया, उसे अंग्रेज़ सरकार ने तत्काल जब्त कर लिया। अब तक अंग्रेज़ लेखकों के लिखे इतिहास ही सभी स्कूलों में टेक्स्टबुक के रूप में पढ़ाए जाते थे जिनमें Vincent Smith का इतिहास प्रमुख था। मुझे याद है, एक विद्यार्थी के नाते इस इतिहास को पढ़ते समय यह अनुभव होता था कि अंग्रेज़ों का युद्ध चाहे मराठों से हो, सिखों से, राजपूतों से, अथवा मुग़लों से, अंततः अंग्रेज़ ही युद्ध में विजयी होंगे। एक हीन भावना छात्रों में भरने का साधन थे उन दिनों पढ़ाए जा रहे भारत के इतिहास। भाई परमानंद डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में इतिहास के प्रोफेसर थे और कालांतर में उन्हें उनकी देशभक्ति के कारण कालेपानी की सज़ा हुई, उन्होंने अपने लिखे इतिहास द्वारा अंग्रेज़ इतिहासकारों की स्थापनाओं का खंडन किया और वस्तुस्थिति का वास्तविक चित्रण किया।

दूसरी पुस्तक जो राजपालजी ने प्रकाशित की उस पर भी अंग्रेज़ी शासन की कोपदृष्टि हुई। यह पुस्तक थी 1919 ई. में डॉ. सत्यपाल द्वारा लिखित 'जलियांवाला बाग का हत्याकांड'। डॉ. सत्यपाल उस समय पंजाब में काँग्रेस के सबसे बड़े नेता थे और पँजाब काँग्रेस कमेटी के प्रधान भी। इसी प्रकार एक अन्य पुस्तक 'देश की बात' जिसमें अंग्रेज़ी शासन द्वारा भारत की संपदा की लूट–खसोट का वर्णन था, उस पर भी उसके लेखक पर बनारस में मुकद्दमा चला और प्रकाशक होने के नाते राजपाल जी सह–अभियुक्त थे और अनेक बार बनारस की अदालतों के चक्कर लगाने पड़े।

कल्पना कीजिए कि एक साधारण स्थिति का प्रकाशक अकेले ब्रिटिश शासन के साथ एक के बाद एक तीन मुकद्दमें लड़ता है और तीनों में विजयी होता है– इसके पीछे कितना श्रम, कितना व्यय, कितना संघर्ष किया होगा– उसकी कल्पना से ही व्यक्ति सिहर उठता है।

यहाँ मैं आना एक अनुभव भी देना चाहूँगा। 1929 ई. में पिताजी के बलिदान के बाद मुझे कॉलेज में पढ़ने के साथ–साथ प्रकाशन का दायित्व भी निभाना पड़ा था। उन दिनों देशभक्ति की लहर चल रही थी। मैंने एक छोटी–सी पुस्तक 'देशभक्तों के गीत' नाम से प्रकाशित की जिसमें उन दिनों के जोशीले गीत संकलित थे जिसके टाइटल कवर पर क्रांतिकारी भगतसिंह का ओजस्वी चित्र था। पुस्तक का पहला ही गीत था,

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है ज़ोर कितना बाजुए–कातिल में है
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आसमां
हम अभी से क्या बताएं, क्या हमारे दिल में है

'देशभक्तों के गीत' पुस्तक छपते ही जब्त कर ली गई। पुस्तक की ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्ती का मेरा यह पहला अनुभव था। एक दिन दोपहर को अचानक पुलिस का एक अफसर और उसके साथ पांच सिपाही दुकान पर आए और उन्होंने कहा कि हमें दुकान की तलाशी लेनी है और यह पुस्तक सरकार ने जब्त कर ली है। जितनी प्रतियां थीं, इक्ट्ठा करके वे साथ ले गए और मुझे शेष प्रतियों का ब्योरा देने को कहा। साथ ही सरकार की ओर से इसके संबंध में मुकद्दमा शुरू हुआ। अंग्रेज़ों की दमन नीति में कई विचित्र बातें भी थीं। जिस भी पुस्तक पर सरकार प्रतिबंध लगाती थी, उसके प्रकाशक के साथ, पुस्तक के लेखक और प्रिंटर को भी सज़ा मिलती थी। इस छोटी सी पुस्तक जिसकी छपाई का बिल 100/– रुपये (उस समय के 100/–) से भी कम था, इस पुस्तक की छपाई के कारण उस प्रेस पर 1000/– रुपये का जुर्माना हुआ। यही नहीं, उस प्रेस की एक मशीन को भी सज़ा दी गई जिस पर पुस्तक छपी थी। उस मशीन को एक वर्ष के लिए बंद करने का आदेश दिया गया ताकि प्रेस को आर्थिक हानि हो। यह छोटी–सी पुस्तक विरजानंद प्रेस में छपी थी जिसके स्वामी और संचालक थे लाला जगतनारायण जो उस समय लाहौर काँग्रेस के सेक्रेटरी थे और देश की आज़ादी के बाद पंजाब कांग्रेस मिनिस्ट्री में शिक्षामंत्री बने। मुझे बहुत दुःख हुआ कि 100/– रुपये से कम के काम के लिए 1000/– रुपये का जुर्माना और एक वर्ष के लिए मशीन का भी दण्ड भी दिया गया है। बड़े संकोच के साथ मैं लालाजी के पास गया और अपना खेद प्रकट किया। वे हँसकर बोले, देश के लिए मैंने सिर ओखली में दे रखा है इन चोटों से अब मुझे डर नहीं लगता।

एक ओर तो ब्रिटिश सरकार की दमन नीति के कारण राजपालजी को एक के बाद एक तीन मुकद्दमों का सामना करना पड़ा, नहीं दूसरी ओर एक ऐसी घटना हुई जो प्रकाशन की स्वतंत्रता के कारण इतिहास का अंग बन गई और जिसके परिणामस्वरूप सरकार को Indian Criminal Procedure Code में भी संशोधन करना पड़ा। 1923 ई. में राजपालजी ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम था, 'रंगीला रसूल'। यह उस दौर की बात है जिसे शास्त्रार्थ और बहसों–मुबाइशों का युग कहा जाता था। सनातन धर्मी, जैनी और सिख, सभी एक–दूसरे पर आक्षेपजनक पुस्तकें प्रकाशित करते थे और उसके प्रत्युत्तर में विपक्ष की ओर से भी वैसी ही पुस्तकें प्रकाशित होती थी। मुस्लिम प्रेस द्वारा योगीराज कृष्ण और स्वामी दयानंद के सम्बन्ध में दो आक्षेपजनक पुस्तकें प्रकाशित थीं जिनके प्रत्युत्तर में यह पुस्तक राजपालजी ने प्रकाशित हुई। की। अंग्रेज़ी शासन की नीति रही है Divide and Rule अर्थात् मत–मतांतरों को आपस में लड़ने–झगड़ने को बढ़ावा दो। पंजाब मुस्लिम–बहुल प्रांत था और लाहौर राजधानी थी। प्रायः अधिकांश महत्त्वपूर्ण सरकारी पदों पर मुस्लिम अफसर ही तैनात थे। 'रंगीला रसूल' दो साल तक पंजाब में बिकती रही, किसी ने एतराज़ नहीं किया। उर्दू भाषा में प्रकाशित यह पुस्तक थी। किसी भी मुस्लिम संगठन अथवा समाचार–पत्र ने इस पर कोई आक्षेप नहीं किया। फिर किसी ने इस पुस्तक की प्रति महात्मा गांधी को भिजवा दी। उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र 'यंग इंडिया' में, इस पुस्तक के विरोध में एक के बाद तीन संपादकीय टिप्पणियां कीं, और यह भी लिखा कि पंजाब सरकार को इस पुस्तक पर कार्यवाही करनी चाहिए। अब मुसलमानों को भी मौका मिल गया। उन्होंने भी ज़िहाद छेड़ दिया। इस पुस्तक की जब्ती के आदेश निकले, और साथ ही राजपालजी पर फौजदारी मुकद्मा सरकार की ओर से चला दिया गया। इस पुस्तक में लेखक थे महाशयजी के घनिष्ठ मित्र, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् और उर्दू व फारसी के मर्मज्ञ पं. चमूपति–जो कालांतर में वाइस–चासंलर भी बने। उन्होंने राजपालजी से यह वचन ले लिया था कि इस पुस्तक पर वे अपना नाम नहीं देंगे और लेखक के रूप में पूरा दायित्व राजपालजी अपने पर लेंगे। लेखक के नाम के स्थान पर पुस्तक में छपा था 'दूध का दूध और पानी का पानी' राजपाल जी ने अपने वचन को प्राणपन से निभाया। जब यह मुकद्दमा दायर हुआ तो बार–बार

शेष पृष्ठ 7 पर ☞

सृष्टि का मूल तत्त्व अग्नि है

● हरिशचन्द्र वर्मा 'वैदिक'

ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में अग्नि है। आत्म द्रव्य से उसके सूक्ष्म शरीर में भी वैश्वानर अग्नि विद्यमान है। स्थूल शरीर में जो गरमी है, वह सूक्ष्म शरीर के द्वारा होती है। जब आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ इस शरीर से निकल जाता है, तो यह शीतल हो जाता है, शरीर की सारी क्रियायें बन्द हो जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि जब तक शरीर में वैश्वानर अग्नि थी तब तक शरीर के सारे उपकरण सक्रिय थे और जब नहीं रही तब निष्क्रिय हो गए।

अग्नि– "सृष्टि में अग्नि–तत्त्व की क्रियाशीलता से संसार की रचना में महत्त्वपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई है। परमात्मा ने भी तप की अग्नि से ब्रह्माण्ड का निर्माण किया है– जैसा कि– **ऋतं च सत्यं चामीद्धातपसोऽध्यजायत**। (ऋ. 10, 190,1) इस मंत्र में तप से ही सृष्टि का प्रारंभ बताया है। अतः सृष्टि में अग्नि तत्त्व की व्यापकता, उसकी क्रियाशीलता एवं प्रत्येक कार्य के लिये उसकी उपयोगिता है। इसलिए अग्नि का ज्ञान जितना अधिक हम प्राप्त करेंगे, उतना ही इस जीवन में हम सुखी और उन्नत हो सकेंगे।

अग्नि पृथिवी पर भी दृष्टिगोचर होता है। परन्तु पृथिवी के प्रत्येक पदार्थ में और उसकी रचना में भी प्रकट या अप्रकट रूप से वह विद्यमान है। अन्तरिक्ष के मध्य से भी वह विद्युत् रूप में मुख्य रूप से विद्यमान है और द्युलोक में सूर्य के रूप में मुख्य रूप से विद्यमान है। इन तीनों स्थानों की अग्नियों का अपने–अपने केन्द्र एवं स्थानों से ऊष्णता, प्रकाश, शक्ति (ऊर्जा) एवं गति रूप में उसका प्रसारण होता रहता है। अतः वेद के लिये अग्नि का गुण, धर्म आदि का निर्देश करना परम आवश्यक है। वेद की सर्वाधिक ऋचाएं अग्नि के ही बारे में हैं। यही सर्वप्रथम ज्ञात करने योग्य तत्त्व है।

जब हम ऋग्वेद को उठाते हैं, तो उसका पहला ही मंत्र अग्नि से प्रारंभ होता है।

'अग्निमीके पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।। (ऋग्वेद. 1,1,1)

इस मंत्र में– **अग्निमीके पुरोहितम्**– पद अग्नि के लिये सर्वप्रथम परिचय दे रहा है कि अग्नि सर्वतः हित करने में अग्रणी है। हम उसकी स्तुति करें। अर्थात् गुणों को जानें। उसके गुणों का अच्छी प्रकार दर्शन करना चाहिए। ऐसी स्थिति में हम वेद के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अन्वेषण में सर्वप्रथम इसी के बारे में विचार करना चाहिए। इस मंत्र में अग्नि को सर्वाधिक हित करने वाला बताया गया है और इस निमित्त उसके गुण भी जानने का उपदेश है।

अग्नि का केन्द्र सूर्य है– परमेश्वर की सृष्टि में यह सूर्य एक विराट् जाज्वल्यमान अग्नि का पिण्ड है, वह न घटता है, न बढ़ता है क्योंकि उसमें जितनी अग्नि शिखा में निकलती है, उतनी ही उसमें उत्पन्न हो जाती है, यह एक अद्भुत क्रिया है। इसमें– मुख्य रूप से 'हीलियमा एवं हॉइड्रोजन गैसें हैं। इन गैसों के कारण सूर्य में अनेक तरह की तापक्षेपी रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं, जिससे सूर्य का तापमान सदा बना रहता है।

वेद में **"उतऊर्ध्वम् अतंतीत्युदान:"** इस व्युत्पत्ति से ज्ञात होता है कि यह उदान–वरुण–तत्त्व–सबसे हल्का होने से उदान है, अतः राजा बनकर सबसे ऊपर विराजमान है। इस मंत्र में कहा है कि वरुण तत्व, उदान हाइड्रोजन ही सूर्य को मार्ग देता है। अर्थात् सूर्य के चारों और हाइड्रोजन गैस रूप में है, उससे अपने तेज से बना रहता है और उसकी किरणों को उससे मार्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार वरुण तत्व का प्रकाश से सम्बन्ध है। वेद ने सूर्य–अग्नि को समस्त जगत् का आत्मा और प्राण कहा है– **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च,** (यजु. 7,42) इन शब्दों में कहा है। वास्तव में सूर्य जगत् का आत्मा रूप ही है।' सूर्य के उस ज्वलन्त गोले से कुछ फुहारे–जैसी विद्युत् उज्ज्वल ज्योतियाँ बहुत तीव्र गति से निकलती हैं, जिनसे असंख्य किरणों के प्रकाश से तरंगें सर्वत्र फैल जाती हैं, जिनमें अपार ऊर्जा शक्ति विद्यमान रहती है, उसकी रश्मि बाहर निकलते समय सप्तरंग की दिखलाई देती है। यह ईश्वरीय प्रेरणा शक्ति से उसमें कितनी अनजानी शक्तियाँ अविरत कैसे क्यों ऐसे क्रियान्वित होती रहती हैं, इसे वही जानता है, जिसने सूर्य को तेजस्क्रिय बनाया है।

इन्हीं तेज के परमाणुओं से वैज्ञानिकों ने एक ऐसे अणु को खोज निकाला जिसे ईश्वरीय कण की संज्ञा दे दी। इसका विवरण निम्न प्रकार है–

"गत वर्ष 5/6, 2012 जुलाई को दुनियाभर के मीडिया ने सुर्खियों में समाचार दिया कि सर्न वेधशाला के वैज्ञानिकों ने वह अभीष्ट परमाणु खोज निकाला है, जिसके विषय में विश्वास किया जाता है कि ब्रह्माण्ड संरचना का सूत्रपात इसी परमाणु तत्त्व द्वारा हुआ था। इस अणु तत्त्व को वैज्ञानिकों ने *"हिंग्स बोसान"* या *'गॉड पार्टीकल'* की संज्ञा दी है। इसकी मूल भावना यह है कि जड़ अणुओं को द्रव्यमान प्रदान करने वाला अणु "ईश्वरीय तत्व" ही हो सकता है।

महामशीन द्वारा प्रति सैकंड लाखों अणुओं को आपस में टकराने के लिये प्रोटांस की दो किरणें टकराई गयीं। अतएव महाविस्फोट के बाद सैकंड के भी न्यूनतम अंश के लिये रह पाने वाली स्थिति आई। यही वह समय था, जब हिग्स–फील्ड अस्तित्व में आया। मान्यता स्थापित हुई, कि हिंग्स अणुओं ने ब्रह्मांड निर्माण प्रक्रिया में अन्य अणुओं को द्रव्यमान प्रदान किया। वैज्ञानिकों की अवधारणा है बिगबैंग (महाविस्फोट) कोई पौने चौदह अरब वर्ष पूर्व हुआ।"

त्रसरेणु, अणु, परमाणु, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रोन, प्रोट्रान, मेसोट्रॉन आदि शक्तियों के कण उसी प्रकार के होते हैं जैसे पियाज के। जैसे पियाज के मध्य में अंकुर होता है और उसी अंकुर से पियाज के परदे रूपी परमाणुओं का विकास होता है। उसी प्रकार पियाज के भीतर अंकुर रूपी विशेष अणु को, जिसे ईश्वरीय कण कहा गया है उसी से परमाणु सब द्रव्यमान होकर विकसित होते रहते हैं।

इस सम्बन्ध में वेद ने पहले ही घोषित कर दिया है, यथा–

"यत्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदोय जामहे। (ऋग्वेद. 1अ.21, सू.15)

स्थूल, सूक्ष्म, कारण और परमकारण आदि (सूक्ष्म कणों के) पदार्थों में चौथी संख्या पूरण करने वाले परमेश्वर हैं। ऋ. म.। अ. 22सू.164 में परमाणु की सूक्ष्मता, माप, द्रव्यमान आदि का ज्ञान दिया गया है।

जब तेज की किरणों, परमाणु में से वैज्ञानिकों ने उस अभीष्ट अणु को खोज निकाला है तब प्रश्न होता है कि उस अग्नि की उत्पत्ति हुई कैसे? यदि सूर्य में तेज की ज्योति न रहे तो क्या होगा?

चन्द्रमा से चार सौ गुणा सूर्य बड़ा है, किन्तु सन् 1995 में सूर्य को पूर्ण रूप से ढाँक लिया था (पूर्ण सूर्य ग्रहण में) सन्ध्या होने लगी थी, पक्षी उड़ने लगे थे। उस समय ठंड लग रही थी। इससे ज्ञात होता है कि यदि सूर्य न रहे तो यह सौर जगत् अन्तरिक्ष बर्फ से जम जाएगा और सारे विश्व का संहार हो जाएगा। किन्तु ऐसा किसी भी काल में न हुआ होगा, क्योंकि सृष्टि के मौलिक उपादानों का नाश नहीं होता। क्योंकि जब ईश्वर जीव और प्रकृति अनादि है, तो उत्पत्ति के पीछे प्रलय और प्रलय के पीछे उत्पत्ति का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है अर्थात् जहाँ–जहाँ तक प्रलय होता है वहाँ–वहाँ से पुनः सृष्टि की उत्पत्ति होने लगती है।

फिर भी यदि मान लिया जाए कि जब सूर्य भी नहीं था, तो पंचतत्व भी नहीं थे, किन्तु उनके परमाणु अन्तरिक्ष में विद्यमान थे, और सारा विश्व शीतलहरी से पूर्ण था, उस स्थिति में ताप की उत्पत्ति हुई कैसे? क्योंकि बिना ताप–तेज के न बर्फ गल सकता था, न शीत लहरी कुहासे में बदल सकती थी, उस समय अग्नि की उत्पत्ति हुई कैसे? (यहाँ उसी प्रकार का विषय है कि जब सृष्टि की आदि में माता–पिता थे ही नहीं, तब प्राणी की उत्पत्ति हुई कैसे?)

ऋग्वेद में एक मंत्र आता है– **"ऋतं च सत्यं चा, भीद्धातपसोध्यजायत।** (ऋ.म. 10, 190 मं. 1,3) सत–प्रकृति में ऋत–हरकत की क्रिया, जब परमेश्वर ने अपने तेज शक्ति से उत्पन्न कर दी, तब महत–विराट् की उत्पत्ति हुई, फिर उसी विराट् के सतोमय भाग से सूर्य जैसे तेज वाले लोक उत्पन्न हो गये। मध्य के रजोमय भाग से निस्तेज वाले चन्द्रादि लोक उत्पन्न हुए और निम्न भाग के तमोमय से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। पृथिवी इन लोकों में ब्रा. में लिखा है– **'इयमु (भूमिः) वा एषां लोकानां प्रथम सृज्यत।** अर्थात् यह भूमि इन लोकों में (अन्यतम एवं) सर्वप्रथम उत्पन्न हुई। दैवी सृष्टि में 'भूःव्याहृति की उत्पत्ति के समय ही भूमि बनी थी **'स भूरिति व्याहरत स भूमिमस्तजत।** (तै. ब्रा. 2–2–4–2)

इसका प्रमाण यह है कि सागर और वनस्पतियों के पश्चात् इस विश्व को जीवनोपयोगी पंचतत्व से प्रस्तुत कर प्राणी जगत से पूर्ण किया। तत्पश्चात् परमात्मा ने सर्वश्रेष्ठ मानव जाति को उत्पन्न किया, इसलिए कि सृष्टिकर्त्ता एवं प्रकृति के परमाणु विज्ञान को विद्वान होकर सब समझें।

वैसे सभी लोक वसु हैं, वसु का अर्थ है बसाने योग्य। सूर्य भी वसु है, क्योंकि सूर्य की किरणें धरती के वायुमण्डल के स्तरों से छनकर इस विश्व के प्राणियों की रक्षक बनकर ऊर्जा प्रदान कर रही हैं। अन्य लोक, बृहस्पति आदि, भी बड़े–बड़े उल्काओं को धरती पर आने से अपने गुरुत्वाकर्षण से रोक लेते हैं। इस प्रकार वे लोक वसु होते हुए एक–दूसरे के रक्षक बने हुए हैं। अतः सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ने बहुत सोच–समझकर लोक–लोकान्तरों की ऐसी रचना की है, जो महामशीन को उसके एक–एक उपकरण की तरह, पंचतत्व से लेकर चन्द्रादि, सूर्य पर्यन्त सबसे सबका सम्बन्ध लगा हुआ है।

इस पिण्ड शरीर का भी वही हाल है, पैर से लेकर मस्तिष्क पर्यन्त उसके अन्दरूनी उपकरणों का सम्बन्ध परस्पर से लगा हुआ है। जैसे शरीर में प्राण, जठराग्नि और ऊर्जा तत्त्व आत्मा के द्वारा प्रधान रूप से काम कर रहे हैं। उसी प्रकार सारे ब्रह्माण्ड में ब्रह्म के निमित्त मौलिक प्राण, ज्योतिरग्नि और ऊर्जा तत्व अपने–अपने गुणानुसार शक्ति के रूप में क्रियाशील हैं।

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

प्रेम

● नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

'अ ढाई अक्षर के इस यौगिक अर्थ वाले शब्द के अर्थ के अनर्थ करते हुए इसे संकुचित करके जितना दुरुपयोग वर्तमान काल में किया जाता है शायद उतना किसी अन्य शब्द का नहीं हुआ होगा। आज प्रेम को दो विपरीत लिंगों के काम वासना के शारीरिक संबंधों का पर्याय मान लिया गया है। लडके-लड़की का वासनात्मक आकर्षण और काम पिपासा की शारीरिक तुष्टि मात्र प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम तो एक बहुत व्यापक अर्थ लिए हुए हैं जो जीवन के प्रत्येक रिश्ते नाते, संबंध, क्रिया में होना चाहिए। पिता-पुत्र, मां-बेटे, भाई-बहन, दादा-दादी, पोता-पोती, पति-पत्नी प्रत्येक पारिवारिक रिश्ते, मित्रों का आपसी व्यवहार, कर्मचारी-अधिकारी, गुरु-शिष्य सामाजिक व्यवहार के प्रत्येक पहलू में प्रेम का अपना महत्व है। इसके अतिरिक्त प्रेम की पराकाष्ठा के दर्शन भक्त के भगवान के प्रति प्रेमभाव से होते हैं। जब भक्त अपना सर्वस्व भूलकर सब कुछ ईश्वर प्रदत्त जान मानकर ईश्वरीय स्तुति प्रार्थना उपासना में स्वयं को निमग्न कर लेता है। वैसे भी वेद भगवान कहते हैं **ईशावास्यमिदं सर्वम्** यजु. 40/1 अर्थात यह सारा संसार ईश्वर से आच्छादित है, ढका हुआ है, ईश्वर इसमें ओत-प्रोत है इसलिए हमें चाहिए कि हम द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, जलन, शत्रुता एवं दूसरों को अपमानित करने के भावों को अपने मन से निकाल दें और सभी में ईश्वर के दर्शन करते हुए सभी से प्रेम पूर्वक व्यवहार करके सबकी सेवा आदर मान सम्मान करें। वैसे प्रेम व्यवहार में एक जबरदस्त चुंबकीय आकर्षण है, जादू है इससे हम पूरे विश्व को जीत सकते हैं, प्रेम से हम शत्रु को भी अपना मित्र बना सकते हैं। हम जैसा बोते हैं वैसा काटते हैं, जैसा व्यवहार करेंगे वैसा प्रतिक्रिया में पायेंगे। द्वेष के बदले द्वेष, घृणा से घृणा, क्रोध से क्रोध उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रेम से प्रेम पैदा होता है और प्रेम का रंग शायद शेष सभी से गहरा और पक्का होने के कारण शेष सभी के ऊपर चढ़ जाता है।

वेद में **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।** यजु. 36/18 कहकर हम सभी को परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखने का आदेश दिया और मित्रता का भाव रखने के लिए परस्पर प्रेम अनिवार्य है। मन, वचन, कर्म से सर्वदा सर्वथा किसी भी प्राणी के प्रति वैर की भावना न रखना अहिंसा है। अहिंसा अभावात्मक है और इसीलिए इस अहिंसा की अवस्था में एक सीढ़ी और ऊपर उठकर परस्पर प्रेम करें। इसे समझने का सरल उपाय है कि हम जीवन में जैसे व्यवहार की अपेक्षा दूसरों से अपने लिए करते हैं वैसा व्यवहार स्वयं दूसरों से किया करें। यदि ऐसा कर पायेंगे तो निश्चित रूप से सबसे प्रेम पूर्वक बरतते हुए अपने धर्म का पालने करेंगे। हम प्राणी मात्र से प्रेम करें। वेद तो **'पशून् पाहि'** कहकर पशुओं की रक्षा और उनसे भी प्रेम का संदेश देता है। प्रेम की भावना का प्रारम्भ घर से करें। माता-पिता, भाई-बहन, बन्धु-बान्धव सभी रिश्तों को प्रेम भाव से सिंचित कर मजबूत बनायें फिर इस इकाई को दृढ़ करते हुए पड़ोसी, समाज, देश और राष्ट्र से प्रेम करें और इसकी परिधि को बढ़ाते हुए संसार के प्राणिमात्र से प्रेम करें और इस प्रेम की पराकाष्ठा इस संसार के रचयिता नियामक ईश्वर से सम्पूर्ण समर्पण भाव से प्रेम करें।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम किस प्रकार से प्रेम करें? अथर्ववेद में उसका समाधान प्रस्तुत करते हुए संदेश दिया **अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।** अ. 30/1 अर्थात् एक दूसरे के साथ ऐसा प्रेम करें जैसे गाय अपने नवजात बछड़े के साथ करती है बिल्कुल निष्कपट, निःस्वार्थ भाव से पूर्ण समर्पण के साथ प्रेम करना चाहिए। प्रेम में कभी कहीं कोई स्वार्थ की भावना, शर्त वा पूर्वाग्रह नहीं हो सकता क्योंकि प्रेम कोई व्यापार या विनिमय की वस्तु नहीं है। प्रेम करने के लिए 'मैं' और 'मेरे' की भावना समाप्त करके 'हम' और 'हमारे' की भावना उत्पन्न करें। प्रेम लौकिक और पारलौकिक सफलता प्राप्ति का उत्तम साधन है। यदि संसार में कोई वशीकरण मंत्र है तो वह प्रेम और माधुर्य ही है। प्रेम वह अग्नि है जिसमें पाप और ताप जलकर भस्म हो जाते हैं। प्रेम संबंधों को प्रगाढ़ करने वाला गारा है। इसलिए कहा गया **"अढ़ाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय"** अर्थात् प्रेम के व्यापक अर्थ को जान मान कर अपने व्यवहार में उतारने वाला व्यक्ति ही सही मायनों में पंडित या विद्वान होता है। संत कबीर ने भी बड़े सुन्दर शब्दों में कहा-

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्राण।।

अर्थात् जिसके मन में प्रेम की हिलोरें नहीं उठतीं वह मृतक के समान है। किसी ने बड़े सुंदर शब्दों में कहा है जीवन सुमन है, प्रेम सुगंधि, जीवन मुक्ति का द्वार है, प्रेम उसका पहरेदार और जीवन यात्रा है, प्रेम उसका पथ। अपने जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए उसमें प्रेम सागर को भर लें। हम वृक्षों से सीखें जो उसे कुल्हाड़ी से काटने वाले लकड़हारे को भी शामिल छाया प्रदान करता है।

502 जी एच 27
सैक्टर 20 पंचकूला

☞ पृष्ठ 5 का शेष

एक संघर्षपूर्ण बलिदान....

पूछे जाने पर भी उन्होंने लेखक का नाम नहीं बताया और सारी जिम्मेदारी अपने पर ली। लगभग दो वर्ष तक मुकद्दमा चला। अंग्रेज डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के कोर्ट से बात पहुंची सेशन जज तक। वह भी अंग्रेज था। सेशन जज ने राजपालजी को दोषी करार दिया। इस निर्णय के विरूद्ध हाई कोर्ट में अपील की गई अंततः पंजाब हाई कोर्ट ने राजपालजी को और रंगीला रसूल को सभी अभियोगों से मुक्त किया और बाइज्जत बरी किया। राजपालजी की ओर से पंजाब के सबसे बड़े वकील डॉ. सर गोकलचन्द नारंग, राय बहादुर, दीवान बद्रीदास और रामलाल आनंद पेश होते थे।

कट्टरपंथी मौलवियों ने कानून अपने हाथ में लेने का निश्चय किया। भड़काऊ भाषण किए गए और मस्जिदों से हत्या की धमकियाँ दी गई। राजपालजी पर तीन बार आक्रमण हुआ जिसमें तीसरा आक्रमण घातक सिद्ध हुआ। इन आक्रमणों के कारण ही महीनों उन्हें अस्पताल में रहना पड़ा। अब आप ही सोचिए कि एक साधारण स्थिति का व्यक्ति, एक ओर ब्रिटिश राज द्वारा लगाए गए अभियोगों का सामना कर रहा है, और दुसरी ओर मतांध मुसलमानों के द्वारा दी गई मौत की धमकियों और फ़तवों का, और हाईकोर्ट तक मुकद्दमा भी लड़ रहा है- एक साथ दो कठिन मोर्चों पर संघर्ष करना कितना श्रमसाध्य और व्ययसाध्य होता है। एक तरह से यह 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का संग्राम था जिसकी भट्ठी में से तपकर राजपाल पंजाब के हिन्दुओं के नेता बने और एक तरह से उन्होंने मृत्यु को ललकारा और उस पर विजय भी प्राप्त कर ली।

स्वामी श्रद्धानंद आदर्श थे राजपालजी के और उनके आध्यात्मिक गुरु भी। संभवतः इसी कारण प्रतिवर्ष गुरुकुल कांगड़ी के अधिवेशन में राजपालजी सपरिवार जाया करते थे। उनके लिए गुरुकुल कांगड़ी तीर्थ के समान या जिसके कुलगुरु थे स्वामी श्रद्धानंद। दोनों के जीवन में एक विचित्र साम्य भी हुआ। स्वामी श्रद्धानंद हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे और गांधीजी के अनुयायी भी। दिल्ली में वे सर्वप्रिय नेता थे दिल्लीवासियों के। 1923 ई. में एक अद्भुत घटना हुई जिसकी मिसाल आज तक कायम है। दिल्ली के मुसलमानों ने पहली बार किसी हिन्दू नेता को आमंत्रित किया कि जामा मस्जिद से जुम्मे की नमाज़ के समय उपदेश दें। आज तक किसी भी अन्य मतावलंबी को यह श्रेय नहीं मिला। स्वामी जी ने उच्च स्वर में वेदमंत्र के साथ अपनी प्रार्थना आरंभ की थी और परस्पर सद्भावना और एकता का संदेश दिया था। अब विधि की विडम्बना देखिये कि एक वर्ष बाद अब्दुल रशीद नामक एक गुमराह मुसलमान ने उनके घर पर जाकर, जब स्वामीजी अस्वस्थ थे, उन्हें गोलियों से भून डाला। कुछ इसी तरह का प्रसंग महाशय राजपालजी के जीवन में है। एक ओर, 6 अप्रैल 1929 के दिन एक मतांध मुस्लिम युवक इल्मदीन छुरे से उनकी हत्या कर देता है, और अगले ही मास मई 1929 मे एक अन्य मुसलमान अब्दुल रहीम जो महाशय का घनिष्ठ मित्र था, उनकी प्रेरणात्मक और प्रशंसात्मक जीवनी लिखता है जिसे पढ़कर पता चलता है कि उनके मन में इस्लाम के प्रति विद्वेष नहीं था और अनेक मुसलमान उनके घनिष्ठ मित्र थे। यह जीवनी महाशय राजपालजी के अन्य जीवनी लेखकों के लिए आधार बनी, क्योंकि इसमें पहली बार उनके बचपन, उनके युवाकाल के संघर्ष और बलिदान तक की पूरी कहानी थी। अब्दुल रहीम एक सच्चा मुसलमान था और राजपालजी के साथ आत्मीयता इसलिए भी थी कि दोनों ने अपना जीवन कड़े संघर्ष में, किताबत के काम में शुरू किया था। अब्दुल रहीम पठान थे और हमेशा कुल्ला और पठानी पगड़ी पहनकर आते थे। एक मुसलमान राजपालजी की हत्या करता है और दूसरा उनके चरित्र का गुणगान।

परिस्थितियों के कारण और अपने चरित्र बल से कैसे कोई व्यक्ति सर्वथा निडर बन जाता है और उसे मृत्यु से भी भय नहीं लगता, इसका उदाहरण राजपालजी थे। प्रतिदिन पंजाब के मुस्लिम समाचार-पत्र 'ज़मींदार' और 'इंकलाब' द्वारा मृत्यु की धमकियां दिये जाने और मस्जिदों मे उनके प्रति मौत के फ़तवे जारी किये जाने के बावजूद वे निश्चित थे, डर उनके हृदय से निकल चुका था। ईश्वर में दृढ़ विश्वास के कारण वे यही कहते थे कि जब तक जीना है निडर होकर ही जीना है। दहशत के वातावरण के उन दिनों में भी वे रोज़ शाम को मोरी गेट और भाटी दरवाज़ा के रास्ते पैदल चलते हुए गुरुदत्त भवन जाते थे। यह पूरा इलाका उस ज़माने में भी मुस्लिम गुंडागर्दी के लिए विख्यात था। परन्तु राजपालजी के पास तो अब डर नाम की कोई चीज़ ही नहीं रही थी। दो बार क़ातिलाना हमले से बचने के बाद, और महीनों अस्पताल मे रहने के बाद, उनके मन से डर निकल चुका था। जब उनके ससुर, जो बड़े ज़मींदार थे,

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

☞ पृष्ठ 7 का शेष

एक संघर्षपूर्ण बलिदान...

उन्होंने सुरक्षा के लिए एक बलिष्ठ अंगरक्षक भेजा तो उसे राजपालजी ने अगले ही दिन लौटा दिया। इस प्रसंग में मुझे आयरिश कवि John Dunn की विश्व–प्रसिद्ध कविता याद आ रही है.....

'Death be not proud, though some have called thee
Mighty and dreadful, for, thou are so,
For, those, whom thou think'st, thou dost everthrew,
Die not,

राजपालजी ने जब प्रकाशन का कार्य शुरू किया तो उन्होंने पंजाब जैसे उर्दूभाषी प्रांत में भी हिन्दी के प्रचार–प्रचार का संकल्प लिया। उन्हें यह श्रेय जाता है कि उन्होंने आज से सौ वर्ष पहले हिन्दी प्रकाशन की श्रेष्ठता के मानदंड स्थापित किए। यदि टाइप का चुनाव करना है तो बम्बई से 'निर्णय सागर टाइप' में ही पुस्तकें कम्पोज करवाते थे। उनके कवर पर राजा रविवर्मा के चित्र अथवा बंगाल के सुप्रसिद्ध चित्रकार 'मित्रा बंधुओं' के चित्र होते थे। विशेष पुस्तकें 'इण्डियन प्रेस', इलाहाबाद से ही छपकर आती थीं। वहीं कम्पोज होती थीं, वहीं उनके टाइटल कवर आदि छपते थे, और पूरा संस्करण लकड़ी की बड़ी पेटियों में बंद होकर लाहौर आता था। कल्पना कीजिए उस ज़माने में यह सब करना किसी स्वप्नदृष्टा प्रकाशक का काम ही हो सकता है। यही नहीं, उन्होंने अंग्रेज़ी की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किए और एक भविष्यद्रष्टा के नाते ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कीं जिन्हें तत्वाकालीन समाज में अवांछनीय समझा जाता था। उदाहरण के लिए, 'परिवार नियोजन' और 'विवाहित जीवन' पर सबसे पहले प्रसिद्ध लेखिका मैरी स्टोप्स की दो पुस्तकें हिन्दी में अनूदित करवाकर प्रकाशित कीं। एक और बात भी इसी संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। उस ज़माने की सभी श्रेष्ठ हिन्दी पत्र–पत्रिकाएँ राजपालजी मंगवाया करते थे और उनकी पूरी फाइलें सुरक्षित रूप से रखते थे। मुझे याद है विद्यार्थी काल में हर दूसरे–तीसरे दिन कोई–न–कोई पत्रिका डाक द्वारा आती थी, जैसे 'सरस्वती', 'माधुरी', 'चाँद', 'प्रभा' आदि। इसी प्रकार बच्चों की पत्रिकाएं भी हम बच्चों के लिए मंगवाते थे, जैसे– 'बालसखा', 'बानर', 'बालक', 'शिशु' आदि।

कैसे एक कर्मचारी का संबंध अपने स्वामी से भाईचारे में परिवर्तित हो जाता है, इसका उदाहरण है महाशय कृष्ण और राजपाल जी का संबंध। जिन दिनों राजपाल जी जालंधर में स्वामी श्रद्धानंद के साथ सहायक संपादक के रूप में काम कर रहे थे, उनके लेख से महाशय कृष्णजी जो स्वयं 'दैनिक प्रताप' और साप्ताहिक 'प्रकाश' के स्वामी थे, और यशस्वी संपादक भी, प्रभावित हुए थे। उन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानंद गुरुकुल की स्थापना के अपने स्वप्न को साकार करने के लिए और इसके लिए धन–संग्रह के लिए प्रायः जालंधर से अनुपस्थित रहते थे। उसका सारा ध्यान और समय गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना में लग रहा था। जालंधर से निकलने वाले उनके साप्ताहिक पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' के लिए समय का अभाव था। यह पत्र उनकी प्राथमिकता नहीं रह गया था। ऐसी स्थिति में महाशय कृष्णजी ने, राजपाल जी को अपने सहायक के रूप में, संपादन और व्यवस्था के कार्य के लिए, निमंत्रण दिया। स्वामी श्रद्धानंद से आज्ञा लेकर वे लाहौर आए और पूरी तन्मयता से अपने को 'प्रताप' और 'प्रकाश' के संपादन और व्यवस्था में जोड़ दिया। ऐसी भी स्थिति बनी जब ब्रिटिश शासकों ने महाशय कृष्ण को जेल में भेजा तो उनकी अनुपस्थिति में राजपाल जी न केवल समाचार–पत्रों के संपादन और व्यवस्था का उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक निभाया, साथ ही महाशय कृष्णजी के परिवार का भी परिवार के सदस्य के समान पूरा ध्यान रखा। दोनों के संबंध गहरे होते गए और महाशय कृष्ण उन्हें अपना छोटा भाई मानने लगे। उन्होंने ही राजपालजी को प्रकाशन का व्यवसाय चलाने की प्रेरणा दी ताकि स्वतंत्र रूप से कुछ काम कर सकें। मुझे याद है बचपन से ही हम महाशय कृष्णजी को 'तायाजी' कहते थे। राजपालजी के बलिदान के बाद तो परिवार के संरक्षक के रूप में उन्होंने पूरी भूमिका निभाई। प्रायः प्रतिदिन ही अपने कार्यालय से आते या जाते हुए वे परिवार का समाचार जानने के लिए आते थे। अनेक बार वे बच्चों के साथ ताश भी खेलते थे ताकि बच्चों को पिता का अभाव महसूस न हो।

महाशय कृष्णजी की महानता और उदारता का ज़िक्र किए बिना यह लेख अधूरा रहेगा। 'प्रताप' के अपने संपादकीय में प्रतिवर्ष एक कॉलम 6 अप्रैल के दिन राजपालजी पर अवश्य लिखते थे। पूरे तीस वर्ष उन्होंने अपना यह व्रत निभाया। ऐसा उदाहरण, छोटे भाई–मित्र के प्रति उसकी स्मृति को ताज़ा रखने का, शायद ही कहीं और मिले। महाशय कृष्णजी पंजाब के सबसे प्रखर और लोकप्रिय संपादक तो थे ही, साथ ही आर्यसमाज के शीर्षस्थ नेता भी थे। स्वामी दयानंद जी के अतिरिक्त जिस व्यक्ति ने महाशय राजपालजी के जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया और अपने आदर्शों की ओर अग्रसर किया– ऐसे दूसरे व्यक्ति महाशय कृष्ण ही थे।

☞ पृष्ठ 4 का शेष

टंकारा में आयोजित ऋषि ...

हे यज्ञ करने वाले कर्मशील मनुष्य! तू आकाश के सूर्य का अनुसरण कर। बुद्धि द्वारा बनाये गये प्रकाशवाले मार्गों के सुरक्षित रख। कवियों, विद्वानों अथवा सामगान करने वाले लोगों के कर्मों को यथोचित प्रकार से बुन आगे बढ़ा। मनुष्य बन मननशील बन! दिव्यगुण कर्म स्वभाव वाली जनता को पैदा कर।

सूर्य जब आकाश में निकलता है तो धीरे–धीरे ऊपर की ओर चढ़ता जाता है। हम सबको भी ऊंचा उठने की चेष्टा करनी है। हममें यह व्यग्रता हो उत्कण्ठा हो कि हम ऊंचे उठेंगे कोई हमें गिरा नहीं सकता। सूर्य के आकाश में ऊपर उठने के दो प्रायोजन हैं– एक प्रकाश देना और अपनी गरमी से हर पदार्थ में संचार करके उसके जीवन को समृद्ध करना। सूर्य मानों ऊपर पहुँचकर यह देखता है कि कहीं अंधेरा तो नहीं रह गया। ऊंचा उठने की इच्छा वाले मनुष्य को स्वयं से प्रश्न करना है– मैंने कितना अंधकार दूर किया है? मैंने दूसरों में कितनी शक्ति का संचार किया है।

दूसरी बात जो इस मंत्र में कही गई वह यह है कि सूर्य के समान ऋषि, महात्मा, बुद्धिमान लोग भी अपनी बुद्धि के प्रकाश से परिपाटियों को Traditions को उज्ज्वल बनाते हैं। 'महाजनो येन गताः स पन्था' मार्ग वही है जिस पर बड़े आदमी चलाते हैं। सज्जनों का यह आचार–सदाचार हमारा मार्ग बना रहे। बुद्धियों को प्रेरित करने की ही प्रार्थना–गायत्री महामंत्र में की गई क्योंकि बुद्धि ही अन्धेरे मार्गों पर उजाला कर सकती है।

तीसरी बात है– मनुष्य तो हैं पर मननशील बहुत कम हैं। संसार के सारे धार्मिक सम्प्रदाय अपने को अच्छा कहते हैं और दूसरों का बुरा, परन्तु मनुष्य बनने पर कोई बल नहीं देता। कोई शेर बनना चाहता है तो कोई भेड़िया लेकिन वेद भगवान तो एक ही बात कहता है– मनुष्य बन। *'बन्दा बण'*।

कवि के शब्दों में–

आदमी आदमी जो बन जाय
कष्ट सारे जहां का मिट जाय

ईश्वर हम सबको अच्छा मनुष्य बनने में सहाय करें और इसके लिए हम सब प्रकाश के मार्गों पर चलते हुए जीवन का गाँठ रहित ताना–बाना बुनते चलें। तभी दिन बदलेंगे, हमारा निजी जीवन आर्यत्व से भरेगा और संसार में आर्य ही आर्य हो जायेंगें।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की ओर ऋषि बोधोत्सव के इस महान यज्ञ में 5,00,000/= रु. की एक विनम्र आहुति दी जा रही है। स्वीकार करें।

आइए कन्धे–से–कन्धे मिलाकर ऋषि के सपनों को पूरा करें।

आप सबके लिये मेरी शुभकामना।
खुश रहो, आबाद रहो, आज़ाद रहो।
जो बोले सो अभय।

वैदिक धर्म की जय!!!

☞ पृष्ठ 6 का शेष

सृष्टि का मूल तत्त्व...

आज विज्ञान सौर ऊर्जा से, जल विद्युत् से, ताप विद्युत से 'टी.वी.' कम्प्यूटर–पताल रेल तथा कल–कारखाने, लाइट, पंखा, फ्रिज, एयरकण्डीशन प्लांट आदि मशीनों को चला रहे हैं। जैसे बिजली से 'मोबाइल, टी.वी., कम्प्यूटर के पार्टस सक्रिय होते हैं– वैसे ही आत्मा से शरीर के सारे तन्तु उपकरण सक्रिय होते हैं और जब जैसे विजुली के कनेक्शन हट जाने से उन सबके सारे यन्त्र ठप्प पड़ जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा का सम्बन्ध शरीर में न रहने से शरीर भी निष्क्रिय हो जाता है।

जब मानव उत्पन्न नहीं हुआ था, तब कौन जानता था कि प्राणियों को उत्पन्न होने के पहले पंचतत्व की सृष्टि कैसे की जाएगी? उसे जीवन उपयोगी कैसे बनाया जाएगा? इस विज्ञान को, जिसमें तीनों काल का ज्ञान मौजूद था उसी सर्वज्ञ परमेश्वर की प्रेरणा से सृष्टि रचने की साम्रगी में उसने ऐसा परिवर्तन किया, ऐसी घटना घटाई कि क्रमशः पांचों तत्व बुद्धिपूर्वक जीवन उपयोगी बनने लगे।

तात्पर्य यह कि, सृष्टि की आदि के समय उसके नियम ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि भूकंप आदि द्वारा धरती की उथल–पुथल से उसके तीनों भागों में सागर और एक भाग के द्वीपों के बनने में लाखों वर्ष लग गये। क्योंकि 'दर्जी कपड़े की काट–छांट तभी तक करता है जब तक कुर्ता तैयार नहीं हो जाता' इसी प्रकार धरती को स्वाभाविक अवस्था में आने तथा स्थल भागों में वनस्पतियों की उत्पत्ति होने में और लाखों वर्ष लगे होंगे। उसके बाद पंचतत्वों के अनेक कार्य–कारणों के योग से उसके नियम के डिजायन के अनुसार प्राणियों की उत्पत्ति होने लगी। फिर कुछ काल के पश्चात् सर्वश्रेष्ठ मानव को उत्पन्न कर दिया।

मु. पो. मुरारई,
जिला–वीरभूम–731219 (प. बंगाल)
मो. 9046773734

मैं कौन?

● अर्जुन देव स्नातक

रात में एक मधुर स्वप्न देखा। एक बाग में घूमते हुए पहुँचा हूँ। चारों ओर सुन्दर सुन्दर, सुगन्धित पुष्प बाग की शोभा बढ़ा रहे थे। पक्षीगण विभिन्न प्रकार की आवाजों के साथ परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। कदम आगे बढ़े, एक कुटिया दीखी, कौतूहल हुआ। वर्तमान में भव्य प्रासादों में रहने–वाले लोगों में यह सामान्य सी कुटिया में कौन है? जानने की इच्छा से कदम आगे बढ़े, देखा काषाय वस्त्रधारी स्वस्थ सुडौल शरीर वाले महात्मा हैं। उन्होंने हमारी ओर स्नेह भरी दृष्टि से देखा। हमने चरण–स्पर्श किए। सुखद–मधुर स्वर के साथ स्नेह सिक्त आशीर्वाद प्राप्त हुआ। एक अन्य आसन पर बैठने के साथ परिचयात्मक वार्तालाप हुआ। उन्होंने हमसे जो पूछा उसका उत्तर हम न दे सके।

उन्होंने कहा– 'कभी ऑपने सोचा है– आप एक शब्द का प्रयोग जीवन भर करते हैं– मैं खाता हूँ, मैं सोता हूँ। मैं दौड़ता हूँ– इसके साथ ही मेरा घर, मेरी पुस्तक, मेरी दुकान, मेरा पुत्र आदि आदि। कभी सोचा है– मैं कौन हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है आदि। सत्य तो यह है कभी सोचा नहीं था तो उत्तर न दे सका। इतने में नियत समय पर घड़ी ने आवाज् की, उठे सो स्वप्न ने व्याकुल कर दिया– पर सत्य तो है 'मैं कौन हूँ'। 'मेरा लक्ष्य क्या है' इस पर हम कभी विचार ही नहीं करते हैं।

चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश करना कठिन होता है। लेकिन प्रश्न की उलझन ने इस दिशा में बढ़ने को विवश किया। इस पर विचार करने से पूर्व यकायक पूर्व पठित एक बात स्मृति–पटल पर अंकित हो गई– पाश्चात्य प्रसिद्ध लेखक 'कारलायल' ने लिखा है–'पता नहीं लोग क्यों 'मैं' की खोज में समय नष्ट करते हैं। "मैं कौन हूँ" इस विचार के झंझट में न पड़कर 'मुझे क्या करना चाहिए' यह सोचकर कार्य में लग जाना चाहिए। मन के अनुसार यह विचार अच्छा लगा। बुद्धि के क्षेत्र में प्रवेश करते ही यह विचार निरर्थक है, यह ज्ञात हुआ। दार्शनिक चिन्तन ने यह सोचने पर बाध्य किया– लोक व्यवहार में सामान्यतया मैं पहले यह जानता हूँ कि 'मैं कौन हूँ' तदनुकूल कार्य करते हैं। मैं अध्यापक हूँ, चिकित्सक हूँ, व्यापारी हूँ आदि जानकर ही तदनुकूल उन–उन कार्यों को करता हूँ– इस प्रकार मैं कौन हूँ–इसका ज्ञान प्रथम होना आवश्यक है। चार्वाक दर्शन की मान्यता है– मैं मात्र शरीर हूँ। शरीर की रक्षा उसका सर्वोपरि चिन्तन है। क्योंकि **'भस्मीभूतस्यदेहस्यपुनरागमनं कुतः'** चार्वाक के मतानुसार इस संसार में जब तक जीवन है, तब तक इस शरीर की रक्षा करो। कर्ज लेकर घी खाओ। यह देह तो नष्ट हो जाएगा, इसकी दुबारा प्राप्ति नहीं होती है। वाल्मीकि ऋषि ने इसे राक्षसी वृत्ति कहा है। रावण सीता से कहता है– "भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरू रमस्व" इच्छानुसार भोग करो अर्थात् खाओ, पीओ और मौज करो। यह विचार शरीर को ही सब कुछ समझने वालों का है। अतः कारलायल का यह विचार कि "मैं कौन हूँ" इस पर विचार न करके "मुझे क्या करना चाहिए" यह विचार करना उचित नहीं है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि प्रथम यह जानना आवश्यक है– "मैं कौन हूँ"। वैसे यह प्रश्न जितना सरल है, उत्तर ही कठिन। इस चिन्तन के साथ अपने कॉलेज में पहुँचे। वहाँ प्रथम घण्टी में कक्षा 12 के छात्रों को नैतिक शिक्षा पढ़ाते हैं। प्रतिदिन छात्र प्रश्न करते हैं। हम उत्तर देकर यथासंभव उनके ज्ञानवर्धन का कार्य करते थे। इस प्रश्न अन्तर में जाकर हमने कहा– प्रतिदिन आप प्रश्न पूछते हैं, उत्तर हम देते हैं। आज हम प्रश्न करेंगे, उत्तर आप लोग देंगे।

हमने प्रश्न किया– मैं खाता हूँ, मैं जाता हूँ आदि और मेरी पुस्तक, मेरा घर आदि में यह 'मैं' या 'मेरा' कौन है? बाल सुलभ ज्ञानवश एक छात्र ने छाती पर हाथ रखकर कहा 'मैं हूँ।' हमने कहा–यह आपने छाती पर हाथ रखा– क्या यह छाती 'मैं' हूँ। एक अन्य छात्र ने कहा– मैं बताता हूँ। छात्र ने सामने वाले डेस्क पर पैर रखकर जूते–मौजे उतारे, साथ ही सिर से पगड़ी उतारी– बाल खोल दिये। एक हाथ, पैर के अँगूठे पर और दूसरा बाल के अन्तिम सिरे पर रखकर कहा– यह अंगूठे से लेकर बाल के अंतिम सिरे तक मैं हूँ। सुनकर कक्षा के छात्र हंस रहे थे। हम उसकी चतुराई पर चकित थे।

सत्य तो यही है कि आधुनिक जन मानस भी इस समग्र शरीर को ही 'मैं' कहता है। छात्र की दृष्टि से उत्तर सही था। हमने कहा– यह जो दिखाई देता है– उसकी संज्ञा शरीर है? क्या मैं शरीर हूँ? क्या शरीर के अतिरिक्त कोई और 'मैं' है? अनेक छात्र बोले–इस शरीर के लिए ही हम 'मैं' का प्रयोग करते हैं।

हमने समझाया– एक समय ऐसा भी आता है जब यह शरीर पड़ा रहता है–आँखें हैं, देखती नहीं, कान हैं, सुनते नहीं है, इसी प्रकार शरीर की सारी इन्द्रियाँ कार्य नहीं करती हैं। माँ का बड़ा लाड़ला बेटा होता है तो वह भी कहती है, इसे अब ले जाओ–पूछें क्यों? तो उत्तर होता है– इसमें से 'मैं' कहने वाला निकल गया। प्रश्न है जो निकल गया, वह 'मैं' कौन है? उसकी संज्ञा क्या है, उसका नाम क्या है? एक छात्र ने कहा–ये आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ ही 'मैं' हैं।

हमने छात्र के इस कथन पर छान्दोग्य उपनिषद् की कहानी सुनाई। सब इन्द्रियाँ शरीर में अपने को श्रेष्ठ समझ रही थीं– उनको लगा मेरे कारण शरीर चलता है– आँख बोली मैं श्रेष्ठ, कान बोले मैं श्रेष्ठ आदि सभी इन्द्रियों अपने को श्रेष्ठ समझ रही थीं। अन्त में प्रजापति ने निर्णय दिया–**"यस्मिन् हवै उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्यते स वै श्रेष्ठः"।** जिसके निकल जाने पर इन्द्रियों सहित समग्र शरीर व्यर्थ हो जाए, भस्मादि करने योग्य हो वही इस शरीर में श्रेष्ठ। आँख निकल गई अन्धा होकर 'मैं' का प्रयोग करता रहा। ऐसे ही अन्य इन्द्रियों के न रहने पर भी 'मैं' प्रयोग चलता रहता है। अन्त में शरीर में स्थित प्राणतत्व के साथ 'मैं' अर्थात् आत्मतत्व जाने लगा तो सारा शरीर शिथिल होने लगा तब मानो सारी इन्द्रियों ने मिलकर कहा–**"भगवन् नेधिः त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मा उत्क्रमी"** हे भगवन्! हम समझ गये आप इस शरीर में श्रेष्ठ हैं मत जाइए।

एक छात्र ने कहा–अभी समझ में नहीं आया। इसे और सरलता से समझाइए। हमने कहा काल्पनिक उदाहरण से बात समझाई– कल हमने सर्कस में एक भयंकर शेर देखा। एक छात्र खड़े होकर बोला– आप झूठ बोल रहे हैं, हमारे साथ ही अन्य छात्र भी बोले– इसमें झूठ क्या है–सर्कस का शेर हमने भी देखा है। फिर भी छात्र ने कहा आप झूठ बोल रहे हैं। हमने पूछा– कैसे? वह बोला देखा आपकी आँख ने, कह रहे हैं आप वाणी से, जिसने देखा वह कहे तो सत्य अर्थात् आँख ने, देखा, वह कहे। छात्र ने क्षण भर के लिए उलझन में डाल दिया, किन्तु हमने तुरन्त कहा– आप भी झूठ बोल रहे हैं, वह कैसे? हमने कहा कि हमने शेर देखा तो सुना आपके कानों ने, अब आपके कान कहें तो सत्य। तुरन्त छात्र तुरन्त बोला– सुनने वाला, बोलने वाला एक है। हमने कहा इसी अर्थ में उपनिषद् के ऋषि ने उसे अर्थात् आत्मा को इन्द्रियों का स्वामी कहा।

छात्रों को आनन्द आ रहा था? पूछा–मरने के बाद 'मैं' कहाँ जाता है? हमने कहा– यह तो निश्चित हो गया कि 'मैं' शरीर नहीं इन्द्रियाँ भी 'मैं' नहीं। फिर हम जिसके लिए 'मैं' का प्रयोग करते हैं उसकी संज्ञा वेदादि ग्रन्थों में आत्मा है। 'आत्मा' शब्द का अर्थ है– **'अत सातत्य गमने'** है। सातत्य गमन का अर्थ है– निरन्तर गति करने वाला अर्थात् एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाने–वाला अर्थात् अविनाशी=जिसका कभी नाश नहीं होता है–वह अविनाशी। इस बात को सुनकर एक शिष्य ने प्रश्न किया– कल नैतिक शिक्षा के घण्टी में आप बता रहे थे यह समग्र संसार नश्वर है– नष्ट होने वाला है– फिर आत्मा अविनाशी=नष्ट ने होने वाला क्यों है।

प्रश्न अच्छा था–उत्तर देते समय स्मरण में आया– ईशोपनिषद् या यजुर्वेद में चालीसवें अध्याय के 15वें मन्त्र में– **'वायुरनिलम्'** 'आत्मा का विशेषण' **'अनिलम्'** दिया है। 'इला' कहते हैं– पृथ्वी को। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो पार्थिव=भौतिक पदार्थ है– वे नष्ट होते हैं। यह 'आत्मा' 'अनिलम्' है, अभौतिक है। अतः अविनाशी है–शरीर भौतिक है–इसका नाश होता है, आत्मा अभौतिक है अतः इसका नाश नहीं होता है। एक शिष्य ने पूछ लिया– जब आत्मा अविनाशी है तो– मृत्यु के बाद इसकी क्या दशा होती है? और क्यों होती है?

यद्यपि प्रश्न पूछने वाले विज्ञान विषय पढ़ने वाले तीव्र बुद्धि वाले छात्र थे– वे शास्त्रीय प्रमाण को न मानकर तर्कपूर्वक कही गयी बात को उत्तम समझते थे। अतः हमने उनसे प्रश्न किया– हमें मनुष्य जन्म मिला, कुछ को पशु–पक्षी आदि का जन्म। इममें से कोई धनवान् घर में और कोई अत्यन्त निर्धन परिवार में, हममें ही कोई उत्तम, कोई मध्यम और कोई सामान्य बुद्धि वाला क्यों है? एक को सुख–सुविधा के सम्पूर्ण साधन जन्म से प्राप्त–दूसरे को क्यों नहीं? आदि संसार की इस विचित्र अवस्था का कारण क्या है? छात्र स्तब्ध थे। पहली बार उनके सामने जीवन का यह अन्तर, जिस पर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया– 'ऐसा क्यों; यह प्रश्न उनके सामने कभी नहीं आया– उन्होंने इस दशा में कभी सोचा नहीं। सोच रहे होंगे कि ऐसा चिन्तन, यह सब सोचने, अवसर तो कभी आता नहीं है– कौन ऐसा सोचता है। सभी सोचते हैं– खाओ, मौज उड़ाओ' यही जीवन है। सभी छात्र मौन अवस्था में तो थे ही, किन्तु गम्भीर चिन्तन में संलग्न। एक

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

माँ की पुकार

संस्कृत–संस्कृति से विरत, संस्कार से दूर।
आकर्षक सौन्दर्य में, अनाचार भरपूर।।

शिक्षा रोती आज है लखि शासक करतूति।
चारित्रिक बल घट गया, मिलती नहीं विभूति।।

जातिवाद की बेलि में सत्ता आयी फूल।
नेता पूँजी पति बने, गये प्रजाहित भूल।।

बाहुबली सब दलों में, मगर बने है आज।,
निगलें मानव मूल्य को, बनें हुए सिरताज।।

भारत माता के कटें, बायें–दायें हाथ।
शीश उतारन में लगे सत्ताधारी हाथ।।

राष्ट्रधर्म अस्मिता की उठी कहीं आवाज।
उसे दाबते तुरत ही सत्ता रूपी बाज।।

अंग्रेज़ी का देश में , बढ़ा हुआ वर्चस्व।
ध्वस्त हो रहा आज है हिन्दी का सर्वस्व।।

राम–कृष्ण के सम बनो, भारत –माँ के पूत।
शुचिता लाओ कर्म में , हो तुम सुघर सपूत।।

सत्य सनातन शान्ति की बढ़े धरा पर मूल।
सुरभित होवे मनुजता, खिलें प्रेम का फूल।।

ओंकार सिंह 'विभाकर'
विद्या वाचस्पति

क्या आर्य समाज देश का उद्धार करेगा?

महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में अपने देश की बड़ी प्रशंसा की थी और यह लिखा थ कि यह देश कभी संसार का गुरु था और दूसरे देशों के लोग यहां शिक्षा प्राप्त करने आते थे, परन्तु अब यह विदेशी लोगों के पादाक्रांत हो रहा है।

उस समय हमारे देश में विदेशी अंग्रेज लोगों का शासन था। महर्षि ने यह लिखा था कि जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि एवं उत्तम होता है अथवा मत–मतांतर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात–शून्य प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायी नहीं है। उपरोक्त कारण से ही महर्षि दयानंद ने 1857 में प्रथम संग्राम में सक्रिय भाग लिया था, जिसके पुष्ट प्रमाण मौजूद हैं।

कुछ वर्ष पहले मैंने स्वयं भारतीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन के अध्यक्ष श्री शीलभद्र याजी का रेडियो भाषण सुना था, जिसमें उन्होंने बताया था कि महर्षि दयानन्द घोड़े पर चढ़कर घूमते थे और स्वतंत्रता का प्रचार करते थे।

इसके पश्चात् भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, रामप्रसाद बिस्मिल आदि कितने ही स्वतंत्रता संग्राम में फांसी के तखते पर चढ़ गए तथा महात्मा गाधी के इस बारे में सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने वाले 80 प्रतिशत लोग आर्य समाजी ही थे। ऐसा डॉ. पट्टाभि सीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में लिखा है। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानंद तथा लाला लाजपत राय आर्य समाज के दो महान नेता थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी का साथ दिया था। लाला लाजपत राय स्वतंत्रता आंदोलन में पुलिस की लाठियों से बलिदान हो गए और स्वामी श्रद्धानंद जी ने दलितों का उद्धार किया। दिल्ली की जामा मस्जिद और फतेहपुरी मस्जिद में हिंदु–मुस्लिम एकता का संदेश दिया। गुरु के बाग के सिखों के सत्याग्रह में भाग लेकर जेल गए। हरिद्वार में मैकाले की शिक्षा नीति के विरोध में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की स्थापना की। उन्होंने भारतीय शुद्धि सभा बनाकर हजारों व्यक्तियों को आर्य हिन्दु धर्म में दीक्षित किया। 23 दिसम्बर 1926 को एक मतांध युवक अब्दुल रशीद की गोलियों से शहीद हो गए। वे ऐसे वीर संन्यासी थे, जिन्होंने पंजाब में जलियांवाला बाग में जनरल डायर द्वारा किए गए नर संहार के बाद अमृतसर में स्वागताध्यक्ष बन कर कांग्रेस का अधिवेशन कराया।

इस तरह बड़ी कुर्बानियों के बाद हमारा देश स्वतंत्र तो हो गया, परन्तु दो भागों में– पाकिस्तान और भारत में अलग–अलग बंट गया और परस्पर झगड़ों में ही कई लाख लोग मारे गए। आर्य हिंदुओं की अरबों रुपयों की समाप्ति पाकिस्तान में रह गई और वे शरणार्थी बन कर भारत में आ गए। इसके बाद बहुत सी नई आर्य समाजें तो बन गई, परंतु स्वामी श्रद्धानंद जैसा कोई नेता पैदा नहीं हुआ। इसलिए दिन प्रतिदिन वेद प्रचार कम होने से आर्य समाज कमजोर होता गया और इस समय भंयकर फूट का शिकार हैं और अपने अस्तित्व को ही खतरे में डाल रहा है। दूसरी ओर हमारा देश भारत भी कई समस्याओं में फंसा है। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, कालाधन, रिश्वतखोरी, महिलाओं से छेड़खानी और बलात्कार के बढ़ते हुए केसों के कारण कन्याभ्रूण हत्या आदि से हमारा देश परेशान है।

संसद और विधानसभाओं में ऐसे लोग सांसद, विधायक और मंत्री तक बन रहे हैं जिन पर अपराध संबंधी कई–कई मामले चल रहे हैं और उनके चयन पर कोई रोक नहीं लगाई गई जा रही है। इस तरह तो कोई भी ऐसा व्यक्ति कभी भी प्रधानमंत्री बन सकता है। अब देश सुधार की कोई किरण नजर नहीं आ रही हैं। वास्तव में स्थिति बड़ी बड़ी भयानक है। इसलिए कर्मठ और क्रांतिकारी आर्य युवकों को आगे आकर आर्य समाज देश के स्वामी नेताओं को जो चुनाव संबंधी झगड़े कर रहे हैं, सीधे रास्ते पर लाना चाहिए। उसके बाद ही आर्य समाज देश के उद्धार का कार्य कर सकता है। महर्षि दयानन्द ने महिलाओं का सम्मान बढ़ाया था और इन्हें पुरुषों के बराबर अधिकार देने के लिए शिक्षणालय खोलने की बात कही थी, परन्तु अब इन्हें सुरक्षा देने की भी आवश्यकता है। महिलाओं के साथ छेड़खानी और बलात्कार के कई कारण हैं, जिन पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। छेड़खानी के लिए कम से कम 5 वर्ष की और बलात्कार के लिए फांसी अथवा दोषी को नंपुसक बना देने की सजा का प्रावधान हो।

महिलाओं के अर्ध–नग्न चित्र समाचार पत्रिकाओं में नहीं छपने चाहिएँ। इन्हें स्वयं भी जागरूक होना चाहिये। महिलाओं से अपराध के कारण ही कन्याभ्रूण हत्याएं भी हो रही हैं। लड़कियों के विवाह में तरह–तरह के खाने–खिलाने पर लाखों रुपये खर्च करना भी एक बड़ा कारण है। इस पर भी सरकार की रोक लगानी चाहिए।

अश्वनी कुमार पाठक
बी–4/256–सी,
केशवपुरम, दिल्ली–110 035

****

आर्यजगत् संम्बन्धी घोषणा
(फार्म–4 नियम 8 देखिये)

1.	प्रकाशन का स्थान	आर्य समाज कार्यालय आर्यसमाज भवन मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–10 001
2.	प्रकाशन अवधि	साप्ताहिक
3.	मुद्रक का नाम	प्रबोध महाजन
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	मुद्रक का पता	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110 001
4.	प्रकाशक का नाम	प्रबोद महाजन
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	प्रकाशक का पता	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली– 110 001
5.	सम्पादक का नाम	पूनम सूरी
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	संपादक का पता	आर्य प्रोदेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110 001
	उन सभी व्यक्तियों के नाम पते जो समाचार–पत्र के स्वामी से तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत के हिस्सेदार हों।	आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली– 110 001

☞ पृष्ठ 9 का शेष

मैं कौन?

छात्र ने उत्तर दिया– ईश्वर की मर्जी जिसको चाहा वैसा बना दिया।

हमने छात्रों से प्रतिप्रश्न किया–आपके पिता न्यायकारी और दयालु हैं। उत्तर मिला– हाँ। हमने कहा–अगर पिता अच्छे बालक को सुविधा न दे, दुष्ट बालक को दे तो– ऐसा पिता कैसा है? उत्तर मिला–अच्छा नहीं– क्योंकि अच्छे को उत्तम सुविधा देकर उन्नति का अवसर देना उत्तम है, दुष्ट को नहीं। इस सुविधा का आधार क्या होना चाहिए? आधार उत्तम कर्म, उत्तम श्रम। हमने पूछा–ईश्वर न्यायकारी व दयालु है या नहीं? सबने एक स्वर से उत्तर दिया–'है'।

हमने कहा–आपने स्वयं स्वीकार कर लिया कि ईश्वर सबको कर्मानुसार जन्म सुविधा–असुविधा–बुद्धि–मूर्खता –धन–निर्धन आदि की व्यवस्था करता है। क्योंकि वह न्यायकारी व दयालु है।

एक छात्र ने प्रश्न किया–पूर्व जन्म के कर्मानुसार हमें जो मिला है क्या उसी में हमको निर्भर रहना है? हमने कहा– देखो मनुष्य योनि में शरीर की दृष्टि से सबको इन्द्रियों आदि की प्राप्ति समान है। भौतिक दृष्टि से साधनों की प्राप्ति में अधिकता–न्यूनता संभव है। किन्तु, कर्मानुसार प्राप्त को लाभ–हानि में लेने में हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। विद्यालय में पढ़े पाठ को आप याद करें या न करें इसमें आप स्वतन्त्र हैं, किन्तु परीक्षा में लिखे हुए अनुसार अंक पाने में आप परतन्त्र हैं। सत्य तो यह कि कर्म करने में हम स्वतन्त्र हैं फल प्राप्ति में परतन्त्र। हम देखते हैं आपकी ही कक्षा में एक बालक निर्धन है भौतिक दृष्टि से सुविधा हीन–फिर वह कक्षा में सदैव प्रथम आता है, क्यों? क्योंकि प्राप्त असुविधा के लिए न रोकर बहुत परिश्रम करता है। यह कर्म स्वातन्त्र्य ही उसकी उन्नति का कारण है। हम प्राप्त सुविधाओं से उचित लाभ न उठाकर प्राप्त ज्ञान को उपयोग में नहीं लेते हैं। याद रखना है कि भौतिक वस्तुएँ सुख–दुख देने वाली हमारे कर्मानुसार होती हैं वैसे भी संसार की कोई वस्तु सुख–दुख देने वाली नहीं है, हम अपनी वासना से उसमें सुख–दु:ख प्राप्त करते हैं। ऐसे ही संसार की कोई वस्तु नित्य नहीं है, हम अपनी आसक्ति से उसे नित्य समझते हैं। जो विवेक से, सद्ज्ञान से उत्तम कर्मों में संलग्न रहता है, वह आत्मोन्नति करता है, अपने अगले जन्म को उत्तम बनाता है। संसार का समस्त वैभव प्राप्त कर लें या अन्य भौतिक वस्तुएँ प्राप्त कर लें–अन्त समय में आपके साथ कुछ भी नहीं जाता है, हाँ जाता है तो कर्मों का समूह। न जन्म आपके हाथ में है, न मृत्यु। यह जन्म–मृत्यु नियमानुसार अर्थात् कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त होती है। कर्मानुसार जन्म–मृत्यु के इस चक्र की संज्ञा आवागमन है।

अत: जीवन को उत्तम बनाने के लिए सत्कर्मों का संग्रह आवश्यक है। सकाम कर्म आवागमन को बन्धन में बांधते हैं, निष्काम कर्म अर्थात् फलेच्छा त्यागकर परहित, लोकहित के लिए कार्य करेंगे, तो मोक्ष=परमानन्द की प्राप्ति होगी।

संक्षेप में:–

1. 'मैं' शरीर नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, मैं इनसे पृथक् एक तत्व हूँ, जिसकी संज्ञा 'आत्मा' है। 'आत्मा' अभौतिक होने से–'अविनाशी' है।

2. 'आत्मा' कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। वह प्राप्त साधनों का सदुपयोग या दुरुपयोग करने में पूर्ण स्वतन्त्र है।

3. शुभ कर्मों का फल शुभ, अशुभ कर्मों का फल अशुभ प्राप्त करने में ईश्वरीय व्यवस्था से परतन्त्र है।

4. जन्म–मृत्यु अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटने के लिए ज्ञानपूर्वक वासना–रहित निष्काम कर्मों से मोक्ष=ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है।

5 सीताराम भवन, फाटक
आगरा कैंट, आगरा–282001

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 27-28/03/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

आर्यसमाज भुवनेश्वर का विद्वत सम्मान समारोह

भुवनेश्वर आर्यसमाज का तीन दिवसीय 36वां वार्षिकोत्सव संपन्न हुआ। उक्त अवसर पर इस आर्यसमाज के संस्थापक तथा प्रधान डॉ. प्रियव्रत दास जी के पौरोहित्य में अनुष्ठित सम्मेलन में धनपतिगंज गुरुकुल के संस्थापक डॉ. शिवदत्त पाण्डेय को महर्षि दयानन्द पुरस्कार' एवं कन्या गुरुकुल महाविद्यालय चोटीपुरा की आचार्या डॉ. सुमेधा को 'शन्नोदेवी राष्ट्रीय वेदविदुषि पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया। ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त पद्मविभूषण डॉ. सीताकांत महापात्र, ख्यातनामा हृद्रोग चिकित्सक डॉ. कविप्रसाद मिश्र, वरिष्ठ पत्रकार तथा साहित्यक श्री सातकडि होता आदि ने विभिन्न अधिवेशनों में उद्बोधन दिये। स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, स्वामी डॉ. आनन्द, और स्वामी सुधानन्द ने आशीर्वचन प्रदान किये। पं. विसिकेशन शास्त्री ने यज्ञ एवं आर्यसमाज के मंत्री श्री वीरेन्द्र कर ने मंच का परिचालन किया।

डी.ए.वी. मलेरकोटला में मनाया महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल मालेरकोटला (पंजाब) में स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म दिवस धूमधाम से मनाया गया। प्रातः काल सबसे पहले विद्यालय के धर्माचार्य दयानिधि शास्त्री के ब्रह्मत्व में बृहद् यज्ञ किया गया। यज्ञ के मुख्य यजमान विद्यालय के प्राचार्य श्री टी.सी. सोनी और अभिलाषा सोनी जी तथा विद्यालय के सभी स्टाफ वर्ग ने पवित्र वैदिक मन्त्रोचारण करते हुए स्वाहा के

उपरान्त अग्नि में आहुतियाँ प्रदान कीं। यज्ञ उपरान्त डी.ए.वी. के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों द्वारा दीप तथा मोमबतियां जलाई गईं। विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला गया। अन्त में सभी स्टाफ तथा विद्यार्थियों को प्राचार्य श्री टी.सी. सोनी जी ने सम्बोधित करते हुए कहा कि हम सबको स्वामी जी के जीवन को पढ़ना चाहिए और उनके गुणों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

डी.ए.वी. अशोक विहार फेज IV की प्राचार्या हुई सम्मानित

महिला दिवस के अवसर पर महिलाओं के विकास एवं सशक्ति करण के उल्लेखनीय योगदान के लिए डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल अशोक विहार की प्राचार्या श्रीमती कुसम भारद्वाज को 'नार्थ दिल्ली रेजिडेंट्स वेलफेयर फेडरेशन वुमन राइट अवॉर्ड' से सम्मानित किया गया। फेडरेशन के अध्यक्ष श्री अशोक भसीन के नेतृत्व में आयोजित भव्य समारोह में दिल्ली की सम्माननीय मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित ने उन्हें यह पुरस्कार प्रदान किया।

इस अवसर पर विद्यालय के प्राथमिक स्तर के छात्रों द्वारा दी गई रंगारंग नृत्य प्रस्तुति 'सेव गर्ल चाइल्ड' की, सभी उपस्थित जनों ने मुक्त कंठ से सराहना की।

श्रीमती कुसुम भारद्वाज ने अपनी इस महती उपलब्धि का श्रेय समस्त डी.ए.वी. परिवार, भागीदारी समिति, नार्थ दिल्ली रेजिडेंट्स वेलफेयर फेडरेशन तथा अपने विद्यार्थियों और सहकर्मियों को दिया।

आर्य समाज जनकपुरी में चार दिवसीय वेदप्रचार-हुआ सम्पन्न

महिला सम्मेलन की मुख्य वक्ता डॉ निष्ठा विद्यालंकार थीं। शेष तीनों दिन प्रातः सायं प्रख्यात वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी के प्रेरक प्रवचन हुए। अपने प्रवचनों में उन्होंने कहा कि सम्पत्ति, संतान, सफलता सौभाग्य से प्राप्त होती है। उन्होंने कहा कि यज्ञ जीवन की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है, किन्तु समझने की बात यह है कि यज्ञ की आत्मा–'स्वाहा' है, यज्ञ का प्राण–इ दन्न मम' है और यज्ञ का सार–'सुगन्धि' है।

समापन एवं सम्मान समारोह में अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए डॉ स्वामी आर्येश आनन्द सरस्वती जी ने कहा कि ऋषिवर दयानन्द ने बड़े से बड़े प्रलोभनों को ठुकरा दिया और कभी अपने सिद्धान्तों से समझौता नही किया। हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेते हुए वेदानुकल जीवन व्यतीत करना चाहिए।

समारोह में श्री रामनाथ जी सहगल, स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती (पूर्णनाम दिनेशचन्द्र त्यागी) ऋषिचन्द्रमोहन खन्ना, डॉ. राणा गन्नौरी आदि ने अपने उदबोधन दिये।

समाज के यशस्वी प्रधान डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया ने सभी अभ्यागतों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए मोक्षप्राप्ति की दिशा में पग बढ़ाने की तथा सदैव सत्कर्म करने की प्रेरणा दी।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**